शहर की पगडंडियाँ

हरिशंकर शर्मा

शहर को केन्द्र में रखकर मैंने खास नज़रिया से लिखा है। ऐसे पक्ष जो महत्त्वपूर्ण, लेकिन लोगों की उनमें रुचि नहीं, अत: किसी शहर के सांस्कृतिक विकास की यात्रा इसके बिना अधूरी है। इस श्रमसाध्य कार्य का नाम है– 'शहर की पगडंडियाँ'। ये पगडंडियाँ हैं– यहाँ के गली-मोहल्ले, इतिहास, पुरातत्त्व, लोकगीत, साहित्य का परिदृश्य, पुस्तकालय, पुस्तक-प्रकाशन, संगीत गायिकी, फ़िल्म, चित्रकला, प्रकृति और पर्यावरण, महाकाव्य, उद्योग, श्मशान और आस्था के तीर्थ। पुस्तक में विभिन्न शीर्षकों की इक्कीस पगडंडियाँ हैं, जिसकी मंजिल शहर पर समाप्त होती है।

किसी शहर पर लिखना श्रमसाध्य कार्य है। मैं इस शहर में पला-बड़ा हुआ हूँ। अत: शहर का ऋण चुकाने का प्रयास कह सकते हैं। वैसे भी आज लोगों में दीप बनने की लालसा कम हो रही है। आज दीप के गुणों को बिसरा दिया है। दीप का गुण है– प्रकाश देना। सदियों से यह परम्परा रही है। दीपपुंज का पर्व दीपावली इसी का प्रतीक है। लोगों में दीपक के स्थान पर सूर्य बनने की इच्छा बलवती हुई है। लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम सूर्य करोड़ों दीपकों/तारों के प्रकाश को निगल जाता है। यही गिरावट आज प्रत्येक जनपद में देखी जा सकती है। अत: साहित्य में गिरावट उसी का परिणाम है। 'शहर की पगडंडियाँ' पुस्तक लोगों को सूर्य के स्थान पर दीप बनने की प्रेरणा देगी।

शहर की पगडंडियाँ

शहर की पगडंडियाँ

हरिशंकर शर्मा

प्रकाशक

नारवाल प्रकाशन

मेन मार्केट, पिलानी-333031 (राज.)

ग्रंथ समर्पित

सुपौत्र दर्श शर्मा

मेरी प्रेरणा

शहर का प्रबुद्ध वर्ग

अनुक्रम

अघट घटना से उपजा अमृत

'सन्तोष' मेरी उस कल्पना का नाम है जहाँ लम्बा कद, गौर वर्ण, स्मित मुस्कान, नेत्रों की चपलता, कुछ लम्बे-भूरे केश एक विशेष प्रकार का व्यक्तित्व जो स्थूल नहीं उसमें अपने जीवन की गरिमा है। इन सबका मिश्रित नाम है– 'संतोष'। साधारण परिवार में पली उसे अकेले आई का प्यार मिला। वह कहीं पिता की टूटी टांग का सहारा है तो कहीं अपनी माँ के लिए अकेली बेटी का प्यार। आदर्श है उसका जीवन अपने लिए और समाज के लिए। कला उसका शौक है व्यवसाय नहीं। कभी-कभी मधुर ध्वनि में रीझकर कुछ चित्र भी बनाया करती है। उसकी चपलता चित्रों द्वारा परिलक्षित होती है। वह स्वयं एक चित्र है। यह था उसका व्यक्तित्व जिसने मुझे भी उसने जीवन का अंग बनाना चाहा। मैंने भी उसे आत्मा के विशाल पट पर चित्रित करने का प्रयत्न किया। तूलिका छूट गयी, रंग बिखर गए एक विशेष प्रवाह लिए चित्रपट पर एक ही चिह्न बना 'सन्तोष'।

रात्रि में निर्मल चन्द्रिका संसार का शृंगार कर रही थी। चित्रपट एक स्वच्छ दर्पण की भांति स्टैन्ड पर रखा हुआ था। इस चन्द्रिका ने प्रथम बार साहस किया था चित्रपट पर प्रकाश डालने का। न जाने कितनी बार झरोखे के मध्य इस चन्द्रिका का आगमन हुआ होगा। फिर वही अंधकार मैंने कई बार सोचा कि कोई चित्र बनाऊँ किन्तु साहस न होता। यही क्रम चला। मेरे कला जगत में एक विचित्र घटना घटी कि अचानक सुष्मा का आगमन हुआ। आरम्भ में तो यह जीवन में एक नवीन उत्साह लायी किन्तु आगे चलकर 'सुष्मा' सूर्य बन गई। ग्रीष्म का सूर्य जीवन झुलस गया, कल्पना जगत में आग लग गई, सब कुछ बर्बाद हो चुका था। यह मेरी कला यात्रा का प्रथम चरण था। जहाँ कला-जगत भ्रष्ट होता दिखायी पड़ रहा था किन्तु सत्य का सहारा लिए मैं आगे बढ़ा।

कुछ समय पश्चात सुष्मा की किरणों से जलें हुए चितेरे के मन में आशा का संचार हुआ कि उसका लक्ष्य भ्रष्ट नहीं, इसी लक्ष्य के मध्य वह जीवन की प्रतीक्षा में था।

सन्तोष से जीवन में आशा का संचार हुआ, अंधकार समाप्त हुआ। इस संसर्ग से जीवन में प्रथम बार अनुभव हुआ कि वह आशा का दूसरा नाम है तथा आशा ही उत्साह की जननी है, आशा में जीवन है। प्रथम बार उसने जीवन में साथ चलने का साहस किया था। उसके चले हुए दो पग मेरे लिए जीवन का सहारा बन गए और आज भी। किसी के पदचिह्नों पर चलना कोई बुरी बात नहीं बशर्तें वह आदर्श की ओर बढ़ने वाले हों। मुझे इन्हीं पदचिह्नों में अपना लक्ष्य मिला। इसी पर आज निरन्तर बढ़ रहा हूँ।

संतोष में असंतोष छिपा है और असंतोष में संतोष। संतोष का मार्ग सरल नहीं यह एक साधना है। मैं इस साधना में कहाँ तक? साधना मार्ग की कठिनाईयों उत्थान-पतन से क्या डरना। साधना मार्ग की समस्त कठिनाईयाँ इस जीवन को प्राप्त हुई। यह मेरे जीवन का दूसरा मोड़ था।

चित्र-वीथिका में रहने वाला पक्षी एक घटना से मर गया। गंगा नदी के पुल से फेंककर उसका अंतिम संस्कार किया गया। पक्षी का कल्पना लोक समाप्त हो चुका था अब वह इसी लोक का प्राणी है। यहीं का जीवन व्यतीत करना चाहता है संतोष के साथ। ऊँचे महलों के मध्य मैंने अपनी कल्पना का एक सुन्दर नीड़ बनाया था। सुष्मा की किरणें उसे जला गयीं। क्या वे अपराधिनीं हैं इस घटना के प्रति? दोष मेरा ही था, नीड़ नीचे बनाना चाहिए था शायद सुष्मा की किरणें वहाँ न पहुँच पाती। पक्षी के लिए झरोखा नहीं, अपना नीड़ कहाँ बनाए? महल के स्वामी ने नीड़ को स्थाई स्वरूप देने का प्रयत्न किया था किन्तु महल के नौकरों की चालबाजी से यह नीड़ उजाड़ा गया, दोष किसी का नहीं था।

नीड़ उजड़े आज लम्बा समय हो चुका है पक्षी दूसरा नीड़ बसा चुका था। स्थान नया था। जिस वृक्ष पर नीड़ बसाया गया उस पर कौए व कोयल सभी पक्षी साथ-साथ रहते थे। कौओं के समूह ने कोयल के साथ धोखा किया। कोयल की संतानों को अपना घोषित कर उसे नीड़ से निकाल दिया। बसन्त के अभाव में अन्तर कर पाना कठिन था कि दोषी कौन?

अब बसन्त ऋतु प्रकृति रानी आशा के हिलोर ले रही है। इस पक्षी का यह नीड़ उसे चिरशांति दे सकेगा, क्या उसे पुन: संतोष प्राप्त होगा? देखो, उसका यथार्थ जीवन किस ओर जाता है।

मेरा यह प्रथम आलेख स्थानीय दैनिक में 'संतोष-असंतोष के मध्य पलती मानवता' शीर्षक से सन् 1972 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसी को नया शीर्षक दिया है– 'अघट घटना से उपजा अमृत'। उसके बाद मैं निरंतर लिखता-छापता रहा हूँ। यह पुस्तक 'शहर की पगडंडियाँ' उसी श्रम का परिणाम है। इस आलेख को व्याकरणिक दृष्टि से परखने की कोशिश न की जाए। ऐसा विनम्र निवेदन है।

किसी शहर पर लिखना श्रमसाध्य कार्य है। मैं इस शहर में पला-बड़ा हुआ हूँ। अत: शहर का ऋण चुकाने का प्रयास कह सकते हैं। वैसे भी आज लोगों में दीप बनने की लालसा कम हो रही है। आज दीप के गुणों को बिसरा दिया है। दीप का गुण है– प्रकाश देना। सदियों से यह परम्परा रही है। दीपपुंज का पर्व दीपावली इसी का प्रतीक है। लोगों में दीपक के स्थान पर सूर्य बनने की इच्छा बलवती हुई है। लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम सूर्य करोड़ों दीपकों/तारों के प्रकाश को निगल जाता है। यही गिरावट आज प्रत्येक जनपद में देखी जा सकती है। अत: साहित्य में गिरावट उसी का परिणाम है। 'शहर की पगडंडियाँ' पुस्तक लोगों को सूर्य के स्थान पर दीप बनने की प्रेरणा देगी। मेरा यही प्रयास रहा है।

बरेली शहर को लेकर अनेक साहित्यकारों ने लिखा है। व्यंग्य साहित्य सम्राट के.पी. सक्सेना का जन्म बरेली नगर में ही हुआ था। 'ज़िगर बरेलबी' के पुत्र राधेमोहन राय को नगर छोड़े लगभग पचास वर्ष हो गये हैं, लेकिन शहर के मोह से अलग नहीं हुए हैं। यहाँ के कार्यक्रमों में उनकी भागीदारी, अपनी कहानियों आदि में बरेली की स्मृतियाँ हैं। 'उर्दू साहित्य में हिन्दू साहित्यकारों का योगदान' पुस्तक के चार खण्डों में अपनी रचनाधर्मिता की श्रेष्ठता को बनाये रखा है। इधर अलीगढ़ निवासी 'योगेन्द्र शर्मा' का नमन प्रकाशन, दिल्ली से उपन्यास प्रकाशित हुआ हैं– 'रुहेलखण्ड का गाँधी'। लेखक ने फ़ज़लुर्ररहमान उर्फ़ चुन्ना मियाँ के कृतित्व-व्यक्तित्व को केन्द्र में रखकर बरेली की तस्वीर प्रस्तुत की है। उपन्यास हिन्दु-मुस्लिम एकता को समर्पित है। इधर 'सुधीर विद्यार्थी' ने अनेक

पुस्तकों में बरेली के क्रान्तिकारी आन्दोलन के पक्ष को रखने का सफल प्रयास किया है। वे इस क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं। संदर्श पत्रिका का निरंकार देव सेवक अंक; बरेली सेण्ट्रल जेल, बरेली एक कोलॉज तथा आह! जिन्दगी पत्रिका में प्रकाशित आलेख 'झुमके और सुरमे का शहर बरेली' (सन् 2013), अभी हाल ही में पत्रकार धर्मपाल गुप्त, शलभ के आलेखों का संग्रह 'दौर-ए-गुज़िस्ताँ' प्रकाशित हुआ है। ऐसी निष्ठा शहर के प्रति किसमें है!

शायर वसीम बरेलवी की उर्दू शायरी में विशेष पहचान है। उन्होंने अपने नाम के आगे 'बरेलवी' उपनाम जोड़कर शायरी के माध्यम से बरेली का नाम विदेशों में रोशन किया है। किशन सरोज, खालिद ज़ाबेद, डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी, सुकेश साहनी, निरंकार देव सेवक, होरी लाल नीरव ज्ञानवती सक्सेना, शान्ति अग्रवाल, नाथूलाल, अग्निहोत्री नम्र, इस्मत चुगतई एवं डॉ. वीरेन डंगवान आदि को कैसे भूल सकते हैं। यशपाल, शैलेश मटियानी, प्रेमचंद, हृदयेश, जैनेन्द्र तथा पं. राधेश्याम कथावाचक ने (अपनी आत्मकथा) रचनाओं में बरेली का उल्लेख किया है। एक सौ पचास वर्ष पूर्ण होने पर बरेली-कॉलेज बरेली की पत्रिका का विशेषांक वर्ष 1997 में प्रकाशित हुआ था। इस पत्रिका में बरेली-कॉलेज और बरेली से जुड़ी स्वतंत्रता आन्दोलन तथा सन् 1857 की क्रान्ति के योगदान की चर्चा है। इसका प्रकाशन समकालीन कविता के चर्चित हस्ताक्षर डॉ. वीरेन डंगवाल ने किया था। लम्बे समय से आप केंसर से ग्रसित थे उनके निधन से महानगर ने साहित्य के इस पुरोधा को सदा-सदा के लिए खो दिया। मेरे श्रद्धा सुमन उनके चरणों में समर्पित हैं।

बरेली की विशेष पहचान यहाँ के इस्लामिक शिक्षा केन्द्र 'बरेली शरीफ़' के रूप में है। शहर को केन्द्र में रखकर मैंने खास नज़रिया से लिखा है। ऐसे पक्ष जो महत्त्वपूर्ण, लेकिन लोगों की उनमें रुचि नहीं, अतः किसी शहर के सांस्कृतिक विकास की यात्रा इसके बिना अधूरी है। इस श्रमसाध्य कार्य का नाम है– 'शहर की पगडंडियाँ'। ये पगडंडियाँ हैं– यहाँ के गली-मोहल्ले, इतिहास, पुरातत्त्व, लोकगीत, साहित्य का परिदृश्य, पुस्तकालय, पुस्तक-प्रकाशन, संगीत गायिकी, फ़िल्म, चित्रकला, प्रकृति और पर्यावरण, महाकाव्य, उद्योग, श्मशान और आस्था के तीर्थ। पुस्तक में विभिन्न शीर्षकों की इक्कीस पगडंडियाँ हैं, जिसकी

मंजिल शहर पर समाप्त होती है। ये लेख पूर्व में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। बरेली जिला पुस्तकालय में एक पुस्तक 'खबर' थी। उसमें बरेली का इतिहास, कला साहित्य, संस्कृति की महत्वपूर्ण जानकारी है। यह पुस्तक यहाँ मुझे खोजने पर भी नहीं मिली। साहित्यिक सन्नाटे से जुड़ा आलेख के लिए भाई सुकेश साहनी का आभारी हूँ। उन्होंने इसके उपयोग की सहज स्वीकृति दी है। मूल शीर्षक को बदल दिया गया है। कुछ नई घटनाएं मैंने जोड़ी हैं।

वाराणसी से प्रकाशित पत्रिका 'सोच-विचार' (मासिक) ने अपने प्रत्येक वर्ष पर काशी विशेषांक का प्रकाशन करके महत्वपूर्ण पहल की है। पत्रिका के अंकों को पढ़कर मन में विचार आया कि अपने जनपद को केन्द्र में रखकर प्रयास किया जाए। इस पुस्तक की प्रेरणा के मूल में काशी अंकों तथा भाई नरेन्द्र नाथ मिश्र की प्रेरणा भी जुड़ी है। इसी का परिणाम है मेरी पुस्तक 'शहर की पगडंडियाँ'। मेरे मित्र शिव कुमार 'शिव' की लम्बी कविता 'मेरा भागलपुर' की प्रेरणा भी इस पुस्तक के कलेवर निर्माण में सहयोगी हैं। डॉ. हेतु भारद्वाज के मार्गदर्शन का भी आभारी हूँ।

पाठकों को यह प्रयास कैसा लगा। पुस्तक के संदर्भ में अपनी लिखित प्रतिक्रिया अवश्य प्रेषित करें। इससे लुप्त होती लेखन की आदत को प्रोत्साहन मिलेगा। डाक-विभाग की लोगों से उम्मीद है कि वे डाक-सेवा से जुड़ें। यह सामाजिक कर्म है। कम-से-कम लेखक और पाठक तो इस चुप्पी को तोड़ेंगे।

हरिशंकर शर्मा
प्लॉट नं. 213, 10-बी स्कीम
गोपालपुरा बाईपास, जयपुर (राज.) 302018
मो. : 09461046594
ई-मेल : harishankersharma53@rediffmail.com

बाँस बरेली की पहचान बनीं बस्तियाँ

ऐतिहासिक सांस्कृति पहचान की दृष्टि से बरेली उ.प्र. का प्रमुख जनपद है। महानगर के ऐतिहासिक तथ्यों की पड़ताल करते समय सीधे महाभारत काल में विचरण करने लगते हैं। अहिच्छत्र (रामनगर) खण्डहरों में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका संबंध महाभारत काल से हो। भीमगदा, अश्वत्थामा, आचार्य द्रोण एवं द्रुपद के विषय की काल्पनिक कथाएँ भ्रम उत्पन्न करने वाली हैं। खुदाई में जो मृण मूर्तियाँ मिली हैं उनमें गुप्तकालीन प्रभाव है। अत: रामनगर के अहिच्छत्र के विषय में गुप्तकालीन जानकारी ही इतिहास है। यह ऐतिहासिक महत्व का स्थल है। यहाँ के पार्श्वनाथ मंदिर का संबंध जैन सम्प्रदाय से है। शिवलिंग, गंगा-यमुना की मूर्तियाँ मूर्तिकला का बेजोड़ नमूना हैं।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता है कि इस स्थान पर एक सम्पन्न सभ्यता का जन्म हो चुका था। इसे कई शासकों ने सजाया संवारा। लम्बे समय तक यह स्थान बदायुँ सूबा का हिस्सा बना रहा है। इतिहासकारों ने अहिच्छत्र को गंगा नदी घाटी सभ्यता का व्यवस्थित नगर माना है। सन् 1500 में कठेरिया राजपूत जगत सिंह ने जगतपुर की स्थापना की। इनके दो पुत्र थे– 'वासुदेव' एवं 'बरलदेव'। वासुदेव के नाम 'बास', बरलदेव के नाम बरल को मिलाकर नगर का नामकरण हुआ वासु बरल तथा वासबरेली। वासु बरेली से बाँस बरेली तथा आज बरेली नाम से ख्यात है। इन्होंने सन् 1537 में बाँस बरेली तथा किला स्थापित किया। यहाँ के कोट मोहल्ले में जगत सिंह का किला था। इस स्थान को पुराना शहर नाम से प्रसिद्धि मिली। पूरा काँवर क्षेत्र एवं आस-पास का इलाका कठेरिया राजपूतों ने सुरक्षित रखने की दृष्टि से रामगंगा खादर में छोटे-छोटे किले बनवाये थे। बरेली का कटघर मोहल्ला कठेरियों की स्मृति शेष हैं। सन् 1657 के आसपास मकरन्दराय में बिहारीपुर, मकरंदपुर, कुंवरपुर, मलूकपुर आदि की

नींव रखी। शाहजहाँ के समय में यह बरेली के गर्वनर थे। इन्होंने शाह आलमगिरी गंज नामक मोहल्ला बसाया। आज यहाँ देशी घी, सर्राफ तथा अन्य व्यवसाय का कारोबारी क्षेत्र है। यह मूलतः हिन्दू बस्ती है।

मुख्यमार्ग शिवाजी मार्ग के नाम से जाना जाता है। सन् 1773 तक रुहेलों की तूती बोलती रही। ऐसी धारणा है कि रुहेला मूलतः अफगानिस्तान के निवासी थे। ये मूलतः अफगानी मुसलमान थे। जो हींग, सूखी मेवा, जड़ी-बूटी, ऊन, घोड़ों का व्यवसाय करते थे। तिजारत के माध्यम से ये दिल्ली दरबार के सम्पर्क में आए। दिल्ली का सराय रुहेला इनका ठहराव केन्द्र था। अपनी बहादुरी वफ़ादारी के कारण ही इन्हें रूहेलखण्ड की सत्ता हाथ लगी।

23 अप्रैल, 1774 ई. में बरेली के रूहेला सरदार हाफ़िस रहमत रजा खाँ मीरानपुर कटरा में बारेन हेरिंटग्स एवं नवाब शुजाउद्दौला के हाथों वीरगति मिली। हुसैन बाग (कटघर) में इनका सुन्दर मकबरा उपेक्षा के कारण खण्डहर हो गया। पुराना शहर का हाफिसपुर (हजियापुर) तथा हाफिसगंज कस्बा आपने बसाया था। इनके पुत्र इनायत खाँ ने 1770 में इनायत खाँ बजरिया (इनायतगंज) का निर्माण कराया था। हाफिस खाँ के ही सबसे छोटे बेटे जुल्फ़िकार खाँ ने जुल्फिकार गंज नाम से बस्ती बसायी थी। वर्तमान में श्यामगंज पुलिस चौकी से लेकर लाजपतराय मार्केट इस क्षेत्र का हिस्सा थे। किसी समय यहाँ ऊँची जगत के पाँच कुएँ थे। गली मुकेरियान की मस्जिद उसी समय की है। आज यह नगर का कारोबारी क्षेत्र है।

मुगलकाल में यहाँ जिन कारोबारी क्षेत्रों की नींव रखी गई उन्हें 'गंज' नाम से प्रसिद्धि मिली। गंज का अर्थ है– निधि, खजाना तथा कोष। यहाँ का शहामतगंज गल्ला, किराना का प्रमुख कारोबारी क्षेत्र है। इसकी नींव 1700 ई. के आसपास शाहमतअली खाँ ने रखी थी। उनकी कब्र श्यामगंज पुलिस चौकी को पीछे कब्रिस्तान में है। सन् 1854 में हाफ़िस रहमत खाँ के वजीर चंपतराय ने चम्पतराय बाग तथा रघुनाथ मंदिर बनवाया। यहाँ की रामलीला उसी समय की है। सन् 1857 के क्रान्ति के समय खानबहादुर खाँ, ब्रिटिश शासन में न्यायिक मजिस्ट्रेट थे। बिहारीपुर की बीबी साहब की मस्जिद किलागेट तथा शिया मस्जिद रुहेला शिल्प का उदाहरण हैं। 07 मई, 1857 में विद्रोह ही विद्रोह में सक्रिय

भागीदारी के कारण इन्हें सन् 1860 में पुरानी कोतवाली गेट के सामने फाँसी दी गई थी। जिला जेल में इन क्रान्तिकारी की कब्र अंग्रेजों ने इस उद्देश्य से बनायी ताकि आते-जाते अंग्रेज अफसर उन्हें ठोकर मारकर अपमानित करते रहें तथा कोई विद्रोह की बात सोच भी न सके। आज यहाँ उनका मकबरा है। शाहबाद में नवाब की हवेली, जोगी नबादा में दीवान शोभाराम की हवेली तथा नौमहला को तोपों से उड़ा दिया गया। आज भी शाहबाद मोहल्ला एवं हाथीखाना मुस्लिम बस्ती हैं। कटरामनराय में दीवान शोभाराम ने जिस हवेली में अपने प्राण बचाये थे वे अवशेष आज भी हैं। रुहेला सेनापतियों नज्जू खाँ बुलन्दसिंह के मजार एवं समाधि को लम्बे समय पश्चात् स्मारक का रूप दिया गया है। लम्बे समय से यह स्मारक स्थानीय उपेक्षा के शिकार हैं।

लम्बे समय तक चौधरी बसंतराय की गढ़ी, रानी लक्ष्मीबाई भवन सांस्कृतिक-धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र रही। भैंरोनाथ मंदिर, शिवाला, नरसिंह मंदिर इत्यादि उसी समय की स्मृतियाँ हैं। छावनी मोहल्ला का ऐतिहासिक महत्व लोग भूल चुके हैं। नकटिया में गाजी युद्ध, पूर्व-पश्चिमी फतेहगंज में युद्ध रूहेलों ने लड़े थे। अत: इन्हें फतेहगंज नाम मिला। जहाँगीर के समय में नवाब फरीद खाँ ने फरीदपुर की नींव रखी थी। आज यह बरेली की तहसील है। रूहेलों के समय में ही बरेली के गली-कूंचों तथा मोहल्लों को खास पहचान मिली। श्यामगंज से किला तक का पाँच किलोमीटर लम्बा भव्य बाजार पूरे उत्तर भारत में नहीं था। इसका शिल्प भारतीय-ईरानी शैली में था। इसके मुख्य मार्ग से जुड़े गली-मोहल्ले तथा फाटक मुख्य मार्ग पर ही खुलते हैं। अंग्रेजों के समय में बने भवन टाऊनहाल, जिला अस्पताल, सिटी पोस्ट ऑफिस, गर्वमेंटल कॉलेज, चर्च, रेलवे स्टेशन तथा कलक्टबकगंज तथा इज्जतनगर की नींव इसी युग में पड़ी। जिला जेल, कचहरी तथा कैंट को भव्यता ब्रिटिश युग में मिली। इसका उद्देश्य था कि आने वाली पीढ़ी रूहेलों के शिल्प और नाम को पहचान तक न सके। सन् 1879 ई. में बरेली में स्वामी दयानंद सरस्वती पधारे। वे खन्ना नर्सरी में ठहरे। ब्रिटिश तथा इस्लाम प्रभाव से इस क्षेत्र को बचाने के उद्देश्य से आर्य समाज मंदिर, अनाथालय, तथा डी.ए.बी. कॉलेज की स्थापना हुई। जिसके कारण यहाँ के लोगों को भारतीयता से ओत-प्रोत परिवेश मिला।

शिक्षा, धर्म, छुआछूत, पाखण्ड निवारण, स्त्री-सुधार तथा शिक्षा जैसे सामाजिक कार्यों का श्रीगणेश इसी समय हुआ। आजादी की लड़ाई में लखनगंज, मोतीपार्क, टाउनहॉल एवं सिविल लाइन्स स्थिर्ति पं. द्वारिका प्रसाद का बंगला तीर्थ-स्थल थे। मोती पार्क की बदहाली के लिए यहाँ के नेता, अधिकारी और जनता बराबर की जिम्मेदार हैं। पुरानी कोतवाली का घंटाघर (चर्च) आज गायब है। कोतवाली के कुछ हिस्से अवशेष रूप में देखे जा सकते हैं। नई कोतवाली की नींव 1927 ई. में पड़ी। पुरानी कोतवाली में आज शास्त्री मार्केट है। चुन्ना मियाँ भवन (शेर बीड़ी बिल्डिंग) में कभी बरेली की तहसील थी। यह भवन रूहेला नवाबों द्वारा निर्मित हैं। पुरानी सब्जी मण्डी में बना विशेष घंटाघर भूल चुके हैं। झुमके और सुरमे का शहर अपनी विशेषताओं हेतु प्रसिद्ध हैं। बचपन में एक कहावत सुनी थी 'उलटे बाँस बरेली को' यदि आप यहाँ भ्रमण करें तो बाँस के जंगल नहीं मिलेंगे। हाँ! बाँस मण्डी अवश्य मिल जाएगी। भौगोलिक दृष्टि से बाँस कुमाऊँ-गढ़वाल की पहाड़ियों तराई में पैदा होता था। इस क्षेत्र की प्रमुख नदी रामगंगा में बाँस-बाड़ा बनाकर प्रवाहित किये जाते थे। पानी प्रवाह में बहकर यह बाँस के बाड़े बरेली में एकत्र होते थे। बाँस पहाड़ पर पैदा हुआ और पहुँचा बरेली। अत: 'उलटे बाँस बरेली को'। यहाँ आज बाँस असम से आता है। आयुर्वेद की दृष्टि से भी बरेली का महत्व है। आयुर्वेद में त्रिफल (हर्र-बहेड़ा आंवला) का महत्व है। यहाँ त्रिफल नाम के तीन नगर हैं– हर्रपुर (हररामपुर), बहेड़ी (बहेड़ा) तथा आंवला। यहाँ यह प्रचुर मात्रा में मिलता था। आज यह क्षेत्र केवल नाम से जाने जाते हैं। मुझे ध्यान है नेशनल हेरल्ड पत्रक में कुतुबखाना (टाऊन हॉल) श्याम श्वेत चित्र छपा था। 1965 में भवन खण्डहर हो गया। नया घंटाघर उसी स्थान पर बना है। आज अतिक्रमण ही इसकी पहचान है।

बरेली का कुतुबखाना ही आज का जिला पुस्तकालय है। इस स्थान को बड़े बाज़ार के नाम से जाना जाता है। बरेली के गली-मोहल्ले एवं सम्पूर्ण नगर होने का प्रमाण हैं। यहाँ स्थानों के नाम गंज, टोला, कुआँ, बाग, नगर, बाज़ार, चौक, कटरा, सराय, ढाल, गली, कूँचा तथा नाथ पर केन्द्रित है। जिन स्थानों के नाम पुर केन्द्रित हैं उनमें गुप्तकालीन सोच है। इस शब्द का चलन उसी युग में होता था परम्परागत रूप में जगतपुर, बिहारीपुर, गंगापुर, कुंवरपुर, मलूकपुर हिन्दू बस्ती हैं। रुहेला सरदार स्थानीय हिन्दुओं को साथ-साथ लेकर चले।

उन्होंने ने भी इसी परम्परा का पालन किया। हाफिस खाँ का बसाया हाफिसपुर (हजियापुर) मोहल्ला। गंज शब्दों को कारोबारी रूप में जोड़ा गया—आलमगिरीगंज, शाहमतगंज। अंग्रेजों के बसाये अनेक क्षेत्र इसी परम्परा से जुड़े रहे। हाता फालतूगंज एवं अंग्रेज (फाल्तून साहब) ने बसाया था। इनकी कोठी बरेली-कॉलेज के पश्चिमी गेट के पास थी। यहाँ आज एक नर्सिंग होम है। रामपुर नवाब के हाता की प्रसिद्धी रामपुर बाग नाम से मिली। यहाँ का पुरानी सप्लाई ऑफिस उनकी कोठी में था। आज यहाँ सरकारी आवास आबाद हैं। कूचा सीताराम, गली नवाबान, गली मनिहारान, कटरा मान राय, कटरा चाँद खाँ, सरायखान आदि की चर्चा फिर कभी करूंगा। बी.आई बाजार का पूरा नाम ब्रिटिश इन्फ्रेन्टरी बाजार है। इसे लाल कुर्ती के नाम से भी जानते हैं। तोपखाना तथा सदर बाजार सहित लाल फाटक एरिया तक कैंट सीमा लगती है। आज यहाँ तिब्बत सीमा पुलिस, रेडियों स्टेशन तथा दूरदर्शन तक का विकास हो चुका है। नई कॉलोनियों का जन्म भी हो चुका है। बरेली शहर महानगर का रूप ले चुका है।

कभी सुरमा और झुमका के लिए चर्चित यह शहर शिक्षा और मेडीकल का हब बनकर उभरा है। इस क्षेत्र में विकास की अपार संभावनाएँ हैं। विमको माचिस फैक्ट्री, कैम्फर इफ्को तथा इज्जतनगर रेल कारखाना, कत्था फैक्ट्री यहाँ के प्रमुख कारखाने हैं। बिजली की कटौती व लालफीताशाही के चलते यहाँ के अधिकांश उद्योग उत्तरांचल स्थानांतरित हो गये हैं। टर्पिनटाइन, विरोजा फैक्ट्री तथा रबड़ फैक्ट्री सहित अनेक चीनी मिले बंद हो चुकी हैं। यहाँ फैक्ट्री कल्चर नहीं है अत: यहाँ की युवापीढ़ी रोजगार की दृष्टि से दिल्ली, नोएडा, गाजियाबाद की ओर पलायान करने को मजबूर हैं। परसाखेड़ा, कलक्टरबकगंज एवं इज्जतनगर यहाँ के औद्योगिक केन्द्र हैं। आसपास के गाँव, कस्बों एवं जनपदों के लोग यहाँ आकर बसने के कारण जन-सुविधाओं से जूझने को शहर मजबूर है। दीनदयालपुरम् तथा राजेन्द्रनगर नये बाजार के रूप में उभरे हैं। नई बरेली की परिकल्पना यहीं से शुरू होती है। दिल्ली रोड़, नैनीताल रोड़, पीलीभीत बाईपास तथा लखनऊ मार्ग आज आधुनिक कॉलोनियों एवं शिक्षा संस्थानों के रूप में जाने जाते हैं। रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, डेंटल कॉलेज, रूहेलखण्ड मेडीकल

कॉलेज, इन्वरटीज डीम्ड विश्वविद्यालय, राममूर्ति इंजीनियरिंग एवं मेडीकल कॉलेज यहाँ की पहचान हैं। इज्जतनगर स्थित आई.वी.आर.आई एवं पक्षी अनुसंधान केन्द्र को पशु-पक्षी चिकित्सा के क्षेत्र में विशेष पहचान है। यह एशिया का विशेष अनुसंधान संस्थान है। इसे भारत सरकार द्वारा डीम्ड विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त है।

आज महानगर मॉल कल्चर की ओर पैर पसार रहा है। मल्टीप्लैक्स एवं आधुनिक कॉलोनियों के रूप में बरेली की पहचान उत्तर भारत में है। महानगर तथा ग्रीन सिटी सहित अनेक सुव्यवस्थित आवासीय परिसर यहाँ की पहचान हैं। बरेली-विकास प्राधिकरण अपनी परिकल्पना के अनुरूप नगर को सुव्यवस्थित रूप में विकसित करने में असमर्थ रहा है। फिर भी आधुनिकता की दौड़ में यहाँ विकास की अपार संभावनाएं हैं।

□

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन :

'भ्रमर' की भूमिका

सन् 1923-24 में गाँधी आंदोलन समाप्त हो गया था। यह युग आन्दोलन का कम विचारों के प्रचार का अधिक था। अतः दैनिक पत्रों की प्रगति के प्रभाव पर मासिक पत्रों की अधिक प्रगति हुई। 1923 में बरेली से प्रकाशित 'भ्रमर' हिन्दी-मासिक इसी प्रगति का परिणाम था। यह विशुद्ध हिन्दी-पत्रिका थी।

बरेली के पं. राधेश्याम कथावाचक प्रेस से 'भ्रमर' मासिक पत्र का सम्पादन 1923 में प्रारम्भ हुआ। अपने समय की इस महत्त्वपूर्ण पत्रिका का प्रकाशन प्रत्येक मास की पूर्णिमा को होता था। वार्षिक मूल्य था तीन रूपया तथा सम्पादक थे, पं. रामनारायण पाठक।

बरेली में पत्रकारिता लेख में निरंकार देव लेखक ने 'भ्रमर' का सम्पादक पं. गंगा सहाय पाराशरी तथा प्रकाशन वर्ष 1929 माना है। पत्रिका के सन्दर्भ में अन्य जानकारियाँ भी भ्रामक हैं।

उक्त सन्दर्भ में श्री सुरेन्द्र मोहन मिश्र ने लिखा- 'भ्रमर' पत्रिका का प्रकाशन अक्टूबर 1922 में आरम्भ हुआ। इसके प्रथम सम्पादक थे पं. गोपी वल्लभ उपाध्याय। सितम्बर 1923 से इसके सम्पणदक राम नारायण पाठक हो गये जिन्होंने 1928 ई. तक इसका सम्पादन किया। पं. गंगासहाय पाराशरी 'कमल' का 'भ्रमर' से कोई सम्बन्ध नहीं था।' (निर्झरिणी 1988)।

मेरे पास 'भ्रमर' के फरवरी-मार्च 1929 का अंक सुरक्षित हैं। इसमें 'भ्रमर' के संस्थापक पं. राधेश्याम कथावाचक, सम्पादक पं. रामनारायण पाठक

तथा मुद्रक पं. राधेश्याम पुस्तकालय बरेली मुद्रित है। 'हिन्दी-पत्रकारिता का इतिहास' में 'भ्रमर' का प्रकाशन वर्ष 1923 ई. अंकित है।

पं. राधेश्याम प्रेस बरेली से रामनारायण पाठक के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'भ्रमर' मासिक पत्र जनवरी, अक्टूबर, दिसम्बर तथा सितम्बर 1928 के चार अंक मेरे पास सुरक्षित हैं। पत्रिका के इन पृष्ठों में पत्रकारिता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर सुरक्षित हैं। पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर निम्न पंक्तियाँ अंकित की जाती थीं-

''विश्ववाटिका में विचरण कर पसीना पुष्पों का मकरंद, लेकिन भ्रमर भूल मत जाना प्रभु पर पंकज का आनंद, सच्चे सुख का धाम वही है, वहीं ठहरना जो निस्पन्द' राधामाधव की गुण गाथा गुन-गुन गाना स्वच्छन्द।''

जनवरी 1928 के अंक तीन के प्रकाशन के साथ ही 'भ्रमर' सातवें वर्ष में प्रवेश करता है। इस अंक में प्रकाशित कविता 'कृपा-पात्र में पं. छैल बिहारी दीक्षित 'कंटक' की भावनाएँ 'मूकवेदना' की ज्वाला में फूटने वाली चिंगारी है। सर्वनाश की इस बेला में शान्ति कहाँ? पत्रिका की स्तरीय सामग्री उपयोगी बन पड़ी हैं। 'प्रताप' में रामतेज शस्त्री के असौन्दर्य बोध को प्रतीक विषय लोलुप क्रीडा, शमशान का वैताल तथा हविस का कुत्ता है। जो हरियाली तो दिखाता है लेकिन घसीटता है करील के कर्कश कांटों में।

'रामधारीसिंह दिनकर' की कविता 'पुष्प विलास'– खिला विहस कर उपवन में था लेकिन आज फिर रोकर मुरझाया है। लैला कौन थी प्रहसन ही नहीं सामयिक सत्य है।लैला की आवाज समय की बदली हुई हवा में मिलकर शान्त हो गयी है।

'भ्रमर' ने अपने सम्पादकीय में लिखा था- 'भारतीय प्रजा का रूस की सरकार की नीति और सिद्धांत में रत्ती भर सहानुभूति नहीं है। रत्न गर्भा वसुन्धरा वाले इस भारत में करोड़ों प्रजा भूखी-नंगी रहती है। उचित हो देश में खुशहाली बढ़ाने के उपाय किये जायें।

इसी प्रकार 17 नवम्बर 1928 में लाला लाजपत राय की मृत्यु पर 'भ्रमर' ने आगे लिखा-'लाला जी के जिस कार्य से सरकार विफल हो उठी

थी। अब दूने जोर शोर से किया जाय। प्राण के बदले प्राण लेना तुच्छ कार्य है।' 'भ्रमर' क्रान्ति के साथ शान्ति का समर्थक था।

सितम्बर 1928 के अंक में हरीशचन्द्र की अग्नि परीक्षा का रंगीन चित्रण 'भ्रमर' के मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित हुआ है। अंक की अधिकांश सामग्री कृष्ण पर आधारित है। 'जन्माष्टमी' और श्रीकृष्ण (लेख) में हरिशरण श्रीवास्तव ने अंग्रेजों के कारनामों की व्याख्या की है।

वर्तमान काल में भारत की जो दुर्गति हो गयी है उसका मात्र कारण हमारी अकर्मण्यता ही है। निज कार्यकलाप से दिखाया कि हममें से प्रत्येक कर्मयोगी बनकर कर्तव्यपालन में अपने प्राणों तक को उद्यत है।'

'तरानये आजाद' में कवि सौ बार मरने तथा सौ बार जीने की बात मात्र याद करने के लिए कहता है। 'अनंग की तरंग' में माधुर्य का अच्छा समावेश है।

'भ्रमर' ने अपने सम्पादकीय में लिखा-'इण्डियन प्रेस प्रयाग के बाबू चिन्तामणि घोष तथा हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के सभापति श्रीधर पाठक की मृत्यु। संस्कृत की अटूट सेवा के लिए खुर्जा के सेठ गौरीशंकर गोयनका द्वारा डेढ़ लाख रूपये का 'पुरस्कार' (दान) कालीदास, वररुचि, वराहमिहिर आदि पण्डित रत्न उसी समय में चमके थे जबसे संस्कृत के समादार को समर्पित लोगों की देश में कमी हुई तब से संस्कृत शास्त्री के अभ्युदय का सूर्यास्त हो गया।'

इस अंक में लगभग 25 पत्र-पत्रिकाओं की अच्छी जानकारी है जो पत्रिका के साहित्यिक रूप की पहचान देने में समर्थ है।

'भ्रमर' मासिक पत्र का अक्टूबर 1928 का अंक मेरे सामने है। श्याम नारायण सेठ के लेख 'मस्तिष्क की शक्तियाँ'- आधुनिक शिक्षा ने हमें ऐसा मूर्ख बना डाला है कि हम किसी बात को उस समय तक ठीक नहीं मानने को उद्यत दिखायी नहीं देते जब तक पंछाही विज्ञान और कलाकोविद् उसका समर्थन न कर दें। अपने पूर्वजों की बातों पर चाहे वह कितनी ही स्थूल अथवा मार्मिक क्यों न हो कान देना तो मानो सभ्यता का गला घोटना है।' भारतीय शिक्षा की आज भी यही स्थिति है।

कुछ इसी प्रकार का समर्थन पं. रामनारायण चतुर्वेदी ने 'आर्तपुकार' में किया है–

'बहु भाँति सताये गये यहाँ के वासी।
इनकी विद्या, बुद्धि, कला सर्वथानासी।।
हम हैं अवलम्ब विहीन विलम्ब न कीजै।।
दुख आरत भारत की अब तो सुधिलीजै।।'

बाबू गुप्तेश्वर प्रसाद श्रीवास्तव की 'विनय मैं-'यह दृश्य राज तुमारे नाम पर न्योछावर की हुई हरिश्चन्द्र की नगरी है। मैं दिन रात तुम्हारे सामने सतृष्णा झोली फैलाये बैठा रहता हूँ।' सम्पूर्ण में ब्रिटिश साम्राज्य के कुपरिणामों की झाँकी है। 'दिन के फरे में' अंग्रेजी दास्ता का संकेत है। कविता-अनांग आनंद में मुरलीधर का नाद है।'

पत्रिका के उक्त अंक में-'वासना वैभव, आत्मसंकल्प, शृंगार शतक तथा वैराग्य शतक एवं बलदेव प्रसाद मिश्र (रायगढ़); वर्तमान (कानपुर के दैनिक का विजयांक); किसान (इन्दौर); भारतेंदु (ज्योतिप्रसाद मिश्र प्रयाग से प्रकाशित मासिक) तथा त्याग भूमि (पं. हरि भाऊउपाध्याय- अजमेर सहित अनेक पत्रिकाओं का उल्लेख है। भ्रमर सकारात्मक सोच की पत्रिका थी।

'भ्रमर' के दिसम्बर 1928 ई. अंक में अफगान नरेश अमीर अमान उल्ला खाँ का चित्र प्रकाशित है। प्रेम का पथ तथा प्रतीक्षा (कविता) के जीवन का यथार्थ–

'कब से बैठा हुआ लकीरें खींच रहा हूँ मैं गिन-गिन।
बोलो अवधि पूर्ण कब होगी, कब देखूंगा वे शुभ दिन।।''

पं. नरेन्द्र देवशास्त्री ने 'अधिकार' में चर्चा की है–

'अधिकारयुक्त बोलने का संग्रह करो..प्रजा का युगवत पालन करना राजा का अधिकार है। जो कर्तव्य के मार्ग पर अकर्तव्य, धर्म के नाम पर अधर्म, राज्य के नाम पर अत्याचार-अनाचार करते रहते हैं। उनके अधिकार सुरक्षित नहीं रह सकते।' लेकिन आज की राजनीति जनता के साथ यही नीति अपना रही है। उसके अधिकारों की चिंता किसे है?

श्याम नारायण पाण्डेय की कविता 'भ्रमर' में भारतीय उपवन के फूलने-फलने की समझ है।

दिसम्बर 1928 के सम्पणदकीय में पं. रामनारायण पाठक ने लिखा था-

'भारतीय खण्ड व्यापार पर लगे ग्रहण के सन्दर्भ में सरकार विलायत के व्यापार की तरक्की चाहती है भारत की नहीं।' हम विदेशी शक्कर खायें और विदेशी दूध पियें और विदेशी सरकार की जय मनावें।' भूमण्डलीकरण ने भारत को विश्व बाजार का हिस्सा मान लिया है। जिस विदेशी सामान, सत्ता, कानून, भाषा का हमने विरोध किया था उसे दूसरे दरवाजों से प्रवेश दिया जा रहा है। आजादी के बाद भी हम चीन, जापान, सिंगापुर से क्यों पिछड़ गये। इस पर आज तक विचार ही नहीं किया गया। हम भारत हैं या इण्डिया?

गाँधी जी का स्वदेशी आन्दोलन की सम्पादकीय में काम कर रहा है।

फरवरी-मार्च 1929 में प्रकाशित 'भ्रमर' मासिक के अंक वैचारिक आन्दोलन हैं। पत्रिका के तेवर-कलेवर में बाँकापन है।

फरवरी 1929 के भ्रमर के अंक में प्रकाशित यह सम्पादकीय पत्रकारिता शैली का अनूठा उदाहरण-

"अलीगढ़ में निकलने वाले अखबार अलीगढ़ मेल तथा हिन्दी बंगवासी दोनों क्रमशः मुसलमानों-हिन्दुओं के अपरिवर्तनवादी दल के प्रतिनिधि होकर देश और राष्ट्र का अनर्थ कर रहे हैं। इनके इस चंगुल से ईश्वर कब इस दलित देश का उद्धार करता है।"

नशे की झझोंक' में 'मतलावा' (सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला)- महात्मा गाँधी भारत को श्याम भूमि बनाना चाहते हैं। देश का किसान जब त्राहि कर रहा हो तब सनातन धर्म पताका उठाकर कोरा श्रीकृष्ण संदेश सुनाते हुए मातृभूमि में शांति स्थापित कर देना दुराशा मात्र है।'

विलायत में होली दहन (लेख) में निर्गुण जी ने अंग्रेजी हुकूमत की अच्छी ख़बर ली है।

अपने बेबाक सम्पादकीय में एक स्थान पर 'भ्रमर' ने पं. राधेश्याम कथावाचक के नाटकों के प्रति ओछे विचार रखने वालों की भी अच्छी ख़बर ली है।

विविध विषय विभूषित मासिक पत्र 'भ्रमर' के मार्च 1929 अंक में कुछ ही पृष्ठ शेष हैं। जो सामग्री है उसमें-'फाग की राग' (पं. मुरलीधर शर्मा); शैतान (रागेश्वर नाथ वर्मा) दार्शनिक की होली (प्रेमचन्द बी.ए.) सहित कविता लेख कहानी इत्यादि लेख 'दार्शनिक की होली' में प्रेमचन्द ने 'सम्पत्ति पर सभी के समान अधिकार की बात पर जोर दिया है।'

कुल मिलाकर भ्रमर मासिक पत्रिका का यह वैचारिक आन्दोलन-प्रेमचन्द, निराला, रामप्रसाद सिंहा बिस्मिल, रामधारी सिंह दिनकर, श्याम नारायण पाण्डेय तथा परिपूर्णानन्द वर्मा सहित अनेक हस्ताक्षरों का स्पर्श पाकर 1922 ई. से 1929 पर्यन्त जनता के हृदय कमल में 'भ्रमर' के समान बसा रहा। आज इस दुर्लभ पत्रिका के अंक सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। संभवतः 'भ्रमर' से ही रंगीन छपाई की शुरूआत रुहेलखण्ड में आरम्भ हुई। पत्रिका में प्रकाशित अनेक दुर्लभ चित्र हैं। अनुसंधानकर्ताओं को 'भ्रमर' में दुर्लभ सामग्री मिलेगी।

□

पत्रकारिता के गलियारे में

रुहेलखण्ड के मुख्यालय बरेली का इतिहास हड़प्पायुगीन है, वेदों तथा महाभारत से लेकर हिन्दू-मुसलमान शासकों का गहरा सम्बन्ध रुहेलखण्ड से रहा है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वर्णन में बौद्ध-जैन धर्म का विकास तथा अफगानिस्तान के 'रुह' नामक स्थान से आये रुहेलों की गौरव गाथा ही रुहेलखण्ड है। बरेली, रामपुरा, मुरादाबाद, बदायूँ, बिजनौर तथा पीलीभीत के जिले इसमें सम्मिलित थे। रुहेलखण्ड की समृद्धि विकास के लिए वर्तमान में बरेली, मुरादाबाद मण्डलों का निर्माण किया गया है।

कला-सभ्यता-संस्कृति का महत्वपूर्ण केन्द्र बरेली हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता का महत्वपूर्ण केन्द्र थी। यूं तो कलकत्ता से प्रकाशित पं. युगल किशोर के सम्पादकत्व में उदंत मार्तण्ड (30 मई 1826 ई.) तथा शिव प्रसाद सितारे हिन्द के सम्पादकत्व में बनारस अखबार 1845 ई. में निकला। यह हिन्दी-पत्रकारिता का आरम्भिक युग था। कालान्तर में बनारस हिन्दी पत्रकारिता का महत्वपूर्ण पड़ाव बनता गया। यहाँ से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं की तर्ज़ पर अन्य जनदों से पत्र-पत्रिकाओं ने जीवन प्राप्त कर हिन्दी की अपूर्व सेवा की है। बरेली से भी अनेक पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

बरेली से सन् 1865 में गुलाब शेखर के सम्पादकत्व में तत्बोधिनी का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यह विशुद्ध हिन्दी पत्रिका थी, इसी क्रम में 1883 में धर्मोपदेश का प्रकाशन आरम्भ हुआ। रुहेलखण्ड की प्रतीक भाषा उर्दू थी। अतः सन् 1862 में 'रोजाना'(उर्दू दैनिक) का प्रकाशन आरम्भ हुआ। आगे चलकर उर्दू पत्रकारिता से जुड़ी अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाश में आना प्रारम्भ हो गयी।

सन् 1890 में सरस्वती का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है। सरस्वती

की ही प्रेरणा का परिणाम था, 'भ्रमर' का 1922 में पं. गोपीबल्लभ शास्त्री के सम्पादकत्व में प्रकाशन। हिन्दी का अन्य समाचार पत्र 'प्रदीप' का प्रकाशन पं. राधेश्याम कथावाचक के संरक्षण में सन् 1933 में हुआ। सन् 1936 में श्री चन्द्र प्रकाश ने हिन्दी कांग्रेस दैनिक को भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए समर्पित किया।

सन् 1924 में गाँधी आंदोलन समाप्त हो गया था, यह युग आंदोलन का कम विचारों के प्रचार का अधिक था। अतः दैनिक पत्रों की प्रगति के स्थान पर मासिक पत्रों की अधिक प्रगति हुई। बरेली से हिन्दी 'पुष्कर' का प्रकाशन इसी प्रगति का परिणाम था। सन् 1925 में डॉक्टर (मासिक) का प्रकाशन आरम्भ हुआ, इसमें स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार तथा विचारों का प्रकाशन होता था।

सन् 1939 में सरकार समर्थक दैनिक 'इन्कलाब' निकला। 'इन्क़लाब' की भाषा उर्दू थी। सरदार सन्त सिंह ने 'इन्साफ' (उर्दू) निकाला तो प्रकाश चन्द्र आज़ाद ने 'स्वराज्य' तथा मोहन लाल शास्त्री ने हिन्दी में 'हलचल' का श्री गणेश किया। स्वराज्य पहले दैनिक और बाद में पाक्षिक हो गया।

धार्मिक तथा जाति पत्रिकाओं में श्री गोपीनाथ कायस्थ समाचार (सक्सेना समाचार) पत्र उर्दू में निकाला। डॉ. श्याम स्वरूप के संरक्षण में तथा श्री धूम सिंह के सम्पादकत्व में 'आर्य मित्र' उर्दू में सम्पादित किया गया, सन् 1936-39 में मुस्लिम लीग का प्रभाव बढ़ने लगा था। अतः बरेली से उर्दू में 'पाकिस्तान' तथा 'मुसलमान' का सम्पादन आरम्भ हुआ। यहीं से बरेली अलीगढ़ की ओर सरकता गया।

स्वाधीनता से पूर्व प्रकाशित हिन्दी पत्रों में 'भ्रमर' प्रमुख मासिक पत्र था। पं. गोपी बल्लभ शास्त्री के पश्चात् इसका सम्पादन पं. रामनारायण पाठक ने जारी रखा। 1922 से 29 तक 'भ्रमर' नियमित प्रकाशित होता रहा, सन् 1929 के फरवरी अंक में 'भ्रमर' ने लिखा था–

"अलीगढ़ से निकलने वाले अखबार अलीगढ़मेल तथा हिन्द बंगवासी दोनों क्रमशः मुसलमानों और हिन्दुओं के अपरिवर्तनवादी दल के प्रतिनिधि होकर देश और राष्ट्र का अनर्थ कर रहे हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनों में एक तबका ऐसा

है जो परम्परा से चली आ रही रीतियों में सामाजिक परिवर्तन होना अधर्म मानता है।'' बहुत कुछ यह प्रवृति आज भी जीवित है।

स्वाधीनता के पश्चात् बरेली में पत्रकारिता का एक नया युग आरम्भ हुआ। उर्दू-पत्रों के स्थान पर हिन्दी-पत्रों की संख्या बढ़ी, युग संदेश, बरेली समाचार, बन्धक, बरेली गजट, सत्यम्, आचार्य, बरेली एक्सप्रेस, पांचाल भूमि, चित्रांकना, जागे जवान तथा 'आज की आवाज' प्रमुख हिन्दी समाचार-पत्रों का जन्म हुआ। कई समाचार आज भी नियमित प्रकाशित हो रहे हैं। यह समाचार पत्र लघु पत्र-पत्रकारिता का ही अंग बन सके। 'युगवार्ता' तथा 'प्रदर्शक दैनिक' चर्चित नहीं हो सके। अल्प काल में ही बंद हो गये। 'एकांत' तथा 'निकुंज' की भी असामयिक मौत हो गयी। उर्दू में रूहेवतन तथा तर्जुमाने आज भी निकल रहे हैं।

रुहेलखण्ड में हिन्दी-पत्रकारिता को नये आयाम देने में दैनिक अमर उजाला (16 जनवरी 1969) का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है। एक दैनिक के रूप में इस क्षेत्र की आवश्यकता का काफी हद तक पूरा किया है। दैनिक विश्व मानव (1974) तथा दैनिक दिव्य प्रकाश का प्रकाशन (30 नवम्बर 1976) में आरम्भ हुआ। 15 नवम्बर 1985 में नवसत्सम् दैनिक का प्रकाशन आरम्भ होकर 1986 में बंद हो गया।

दैनिक समाचार पत्रों के समानान्तर लघु पत्रकारिता के रुप में 1985 में 'युवामंच', 'लोक स्वाति', नागरी, आरोहण पत्रिकाएँ प्रकाशित होने के साथ ही बंद हो गयीं। स्काउट प्रभा (मासिक) का प्रकाशन देश बंधु अग्रवाल तथा 'तपेश' का प्रकाशन उमा शरण कुलश्रेष्ठ ने किया।

निर्झरिणी पत्रिका का प्रकाशन अनियमित हो रहा है। इस पत्रिका का पत्रकारिता अंक 1986 एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। रुहेलखण्ड से पत्रकारिता पर केंद्रित यह पहली पत्रिका है। इसका सम्पादन हरि शंकर सक्सेना कर रहे हैं। वार्षिक रूप में इसके अतिरिक्त 'शोधस्वर' तथा 'तबस्सुम' को भी पत्रकारिता का असफल प्रयास कहना उचित रहेगा। 1986 में भूमण्डल दर्पण नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया गया। यह पत्रिका प्रतियोगी परीक्षाओं को ध्यान में रखकर निकाली गयी थी। इसका सम्पादन पंकज ने तथा प्रबंध सम्पादन पूनम

भारत ने किया था। यह पत्रिका पहले मासिक थी। 'साहित्यायन' त्रैमासिक शोध पत्रिका का प्रकाशन डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त द्वारा जारी है।

पत्रकारिता से जुड़ी भारतीय पत्रकारिता संस्थन तथा राष्ट्रीय पत्र लेखक मंच संस्थान भी पत्रकारिता-क्षेत्र में सक्रिय हैं। 'खुली खबरें' का सम्पादन मनु नीरस द्वारा किया जा रहा है लघुकथा पर केन्द्रित (1 जुलाई 1989) का 'खुली खबरें' अंक स्तरीय प्रयास है। पत्रकारिता संस्थान की पत्रिका 'विविध संवाद' का प्रकाशन जारी है।

पत्रकारिता से जुड़ी एक महत्वपूर्ण उपलब्धि 12 सितम्बर 1989 से दैनिक जागरण (बरेली-संस्करण) का प्रकाशन है। 'नमस्कार बरेली', 'खुसरो मेल दैनिक' आदि समाचार-पत्र एक वर्ष निकलकर बंद हो गए। 'कैनविज टाइम्स' का प्रकाशन बरेली लखनऊ से जारी है लेकिन हिन्दुस्तान दैनिक की प्रतिस्पर्धा में चिंता का विषय है। आज पत्रकारिता मिशन ही नहीं एक उद्योग है, अतः प्रतियोगिता के इस युग में बरेली से दैनिक जागरण एक नयी दिशा दी तथा यहाँ की पत्रकारिता को पंख दिए हैं। दैनिक आज के संस्करण के प्रयास कोई नयी दिशा दे सके। देखना यह है कि कौन पत्र कितने दिन तथा अपनी श्रेष्ठता और लोकप्रियता अक्षुण रख पाता है।

साहित्यिक पत्रकारिता–

लम्बे समय तक बरेली उर्दू-पत्रकारिता का गढ़ रही है। हिन्दी पत्रकारिता का महत्वपूर्ण गढ़ वाराणसी बनने के पश्चात से बरेली से कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। यहाँ से सन् 1865 में गुलाब शेखर के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'तत्बोधिनी' का प्रकाशन हुआ। यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका थी। इसी क्रम में सन् 1883 में 'धर्मोपदेश' के प्रकाशन की सूचना है।

भ्रमर : सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण घटना है। इसकी प्रेरणा से जनपदीय पत्रिकाएँ प्रकाश में आयीं। सन् 1922 में बरेली से प्रकाशित 'भ्रमर' मासिक का प्रकाशन पं. राधेश्याम कथावाचक ने प्रारम्भ किया। पुष्पों का मकरन्द पीने वाला 'भ्रमर' गुन-गुन कर गाता रहा वर्ष 1930 तक।

अपनी इस यात्रा में भ्रमर को चार सम्पणदक मिले-पं. गोपी बल्लभ उपाध्याय, प्रवासी लाल वर्मा, उदय शंकर भट्ट एवं पं. रामनारायण पाठक। विविध-विषय-विभूषित भ्रमर के मुख्य पृष्ठ पर राधा-कृष्ण का तिरंगा चित्र छपा होने के साथ ही यह पंक्तियाँ प्रकाशित की गईं।

"विश्व वाटिका में विचरण कर पीना पुष्पों का मकरन्द।
लेकिन भ्रमर भूल मत जाना प्रभु-पद-पंकज का आनंद
सच्चे सुख का धाम यही है वह टहला ही निस्पंद
राधा-माधव की गुण गाथा गुन-गुन कर गाना स्वच्छंद।"

पं. रामनारायण द्वारा सम्पादितकत भ्रमर 1928 एवं 1929 की फाइल मेरे पास सुरक्षित हैं। जनपद चँदौसी के सुरेन्द्र मोहन मिश्र के पास भ्रमर की सन् 1922, 27-28 की फाइलें सुरक्षित हैं। ऐसा संकेत उन्होंने मुझे लिखे एक पत्र में किया है। यह विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका थी। भ्रमर राष्ट्रीय पहचान की पत्रिका होने के साथ ही रुहेलखण्ड में पत्रकारिता इतिहास को राष्ट्र-भक्ति-चरित्र एवं बौद्धिकता से जोड़ने की एक सही पहल थी। भ्रमर पर केन्द्रित आलेखों में मैं विविध पक्षों की चर्चा कर चुका हूँ।

एकान्त : आजादी के पश्चात बरेली से अनेक साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। इसमें स्वराज का साहित्य विशेषांक (सम्पादकः प्रताप चन्द्र आजाद); मुरलिका (सम्पादकः हरीश जौहरी) एवं एकान्त का प्रकाशन श्याम नारायण की दृष्टि से 'एकान्त' एक दीर्घजीवि पत्रिका है। यह मूलतः कथा केन्द्रित पत्रिका थी। वर्ष 8; अंक 2'3 (फरवरी-मार्च 1992) का लेख महत्वपूर्ण है। सम्पादकीय में एकांत लिखता है-'क्या साहित्यकार साहित्य द्वारा अपनी जीविकोपार्जन कर सकता है?"

युवामन : 'नागरी' (डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त); शोध स्वर (डॉ. भगवान शरण भारद्वाज); 'आरोहरण' (राष्ट्रीय पत्र लेखक मंच बरेली) एवं 'युवामन' के प्रयास सफल नहीं हो सके। ये पत्रिकाएँ एक या दो अंक के पश्चात बन्द हो गईं। बरेली से प्रकाशित 'युवामन' (अप्रैल-मई 1986) के सम्पादकीय में-'युवकों को सिर्फ आदर्श रटाना उन्हें जिन्दगी से असफल बनाना है। उसे टिकाऊ

बनाने के लिए गहरी नींव देनी होगी। कोरी व्यावहारिकता राक्षस बनाती है। चार्ल्स शोभराज बनाती है, नटवर लाल पैदा करती है।...कोरी व्यावहारिकता बेईमानी का लाइसेंस है। युवा बलिदान देनों में हमेशा की तरह अब भी अग्रणी हैं, मगर उसकी पीठ पर आप कुत्सित स्वार्थों की रोटी मत सेंकिए-डॉ. भगवान शरण भारद्वाज। 'निकुंज' की भी असामयिक मौत हो गयी।

निर्झरिणी : बरेली की सांस्कृतिक संस्था निर्झरिणी के सहयोग से निर्झरिणी पत्रिका का प्रकाशन अनियमित हो रहा है। सम्पादक हैं– हरिशंकर सक्सेना। अब तक पत्रिका के दस अंक प्रकाशित हो चुके हैं। पत्रकारिता अंक (1986), लघु कथा अंक एवं कविता विशेषांक चर्चित अंक हैं। अंक 10 के सम्पादकीय में-"प्रतिकूल परिस्थितियों में लघु पत्रिकाओं का जीवन हाथी के पांव के नीचे चींटी के समान है। लेकिन फिर भी अपने अदम्य साहस के बदल पर लघु पत्रिकाएँ जीवित रहने का प्रयास कर रहीं हैं।" इस अंक में क्रान्ति वीर शिवा वर्मा पर केन्द्रित साक्षात्कार एवं संस्मरण महत्वपूर्ण उपलब्धि है। अपने प्रयासों में यह सम्पूर्ण अंक एक कमजोर प्रयास है। निर्झरिणी का गीतकार किशन सरोज पर केन्द्रित अंक सन् 2012 में प्रकाशित हुआ। यह सकारात्मक सोच का परिचायक भी है और किशन सरोज पर महत्वपूर्ण जानकारी भी।

शतदल : दैनिक विश्व मानव से पृथक होने के पश्चात् हृदय विकास पाण्डेय ने बरेली से 'शतदल' मासिक का प्रकाशन जून 1997 में प्रारम्भ किया। यह एक महत्वपूर्ण कदम था, लेकिन आर्थिक तंगी के कारण पत्रिका ने दम तोड़ दिया। 'शतदल' का यूं तो प्रकाशन सन् 1957 मे गोरखपुर से हुआ था। अपने सम्पादकीयः भारतीय परिकल्पना-वसुधैव कुटुम्बकम में-"भारतीय संस्कृति की चिन्तन धारा को पुनः प्रवाहमान बनाने के प्रयास में संघर्षरत लेखकों, कवियों, विचारकों और पाठकों की अभिव्यक्ति का माध्यमय बनेगा 'शतदल'।" शतदल मासिक का प्रकाशन 1957 में मासिक तथा 1960 में साप्ताहिक करा दिया गया। 1974 में इसे बन्द कर देना पड़ा। 1977 में इसका पुनः प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। तीन अंकों के पश्चात् यह पुनः बन्द हो गई। पिछले अनुभवों को लेकर बरेली से इसका पुनः प्रकाशन किया गया। इसके कुल चार अंक प्रकाशित होने की सूचना है।

मंदाकिनी : साहित्यिक पहचान के रूप में इस समय बरेली में अनेक महिलाएं सक्रिय हैं लेकिन पत्रकारिता या साहित्यिक पत्रकारिता में किसी ने भी राष्ट्रीय पहचान नहीं बनाई है। गूँज (प्रथमांक): फरवरी 1991 महिला पत्रिका एवं कवयित्री पूनम भारत द्वारा बरेली में इसका प्राकशन प्रारम्भ किया गया। इस लघु पत्रिका में समाज में व्याप्त विसंगतियों, अशान्ति, अराजकता; घुटन-पीड़ा, आक्रोश-शोषण, हिंसा आदि से उत्पन्न सम्वेदना के सार्थक काव्य स्वर का संकल्प है। युगबोध देशकाल से अल्पायु होने के कारण नहीं जुड़ सका। इसी क्रम में डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित अनियमितकालीन 'मंदाकिनी' का नया अंक आचार्य रमेश वाचस्पति स्मृति-विशेषांक मेरे सामने है। फाल्गुन-अंक 1996 में आचार्य रमेश वाचस्पति के कृतित्व-व्यक्तित्व पर सारगर्भित सामग्री है। पत्रिका एक सराहनीय प्रयास है। प्रकाशन जारी है।

पांचालवाणी : बरेली में सरकारी प्रयासों से भी अनेक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। आकाशवाणी बरेली द्वारा प्रकाशित पांचालवाणी एक ऐसा ही प्रयास है। पत्रिका का विमोचन दैनिक जागरण के स्थानीय सम्पादक बच्चन सिंह के करकमलों से 14 सितम्बर 1995 में आकाशवाणी केन्द्र बरेली में सम्पन्न हुआ। अंक में राजभाषा हिन्दी आकाशवाणी बरेली से जुड़ी महत्वपूर्ण जानकारियाँ हैं। कविता: बालरोग विशेषज्ञ (सतीश कुमार), क्या यही सुखदेना है। (भारत चन्द्र भट्ट) में है-विश्व का विस्तार न्यारा। 'राहें' में मनोज कुमार को भंटक़ने का डर है। कवि राजेश गौड़ की कविता 'एक और महाभारत सज रहा है' में अहिंसा, शान्ति, प्रेम सद्भाव और एकता को सारे विश्व में प्रचारित करने की आवश्यकता है। रेडियो पेजिंग सेवा से जुड़ा महत्वपूर्ण लेख (अनिल कुमार सिन्हा) में तथ्यपूर्ण जानकारी दी गई है। महात्मा गाँधी का बरेली आगमन (13 जून, 1929 एवं 17 अक्टूबर) की महत्वपूर्ण प्रकाशित सूचनाओं से पत्रिका ऐतिहासिक धरोहर बन गयी है। कुल मिलाकर पत्रिका के 36 पृष्ठों में आकाशवाणी परिवार ने सागर भरने का प्रयास किया है। सम्पादक हैं राजेश गौड़।' पत्रकारिता संस्थान बरेली की त्रैमासिक पत्रिका 'विविद संवाद' ने समीक्षक 'मधुरेश' पर केन्द्रित अंक (वर्ष 2014) प्रकाशित किया है। यह एक समृद्ध अंक है। संपादक हैं बीनू सिंहा।

पत्रकारिता और बाजार–

आजादी से पूर्व हिन्दी-पत्रकारिता मिशनरी भावना से प्रेरित थी और उद्देश्य था देश की आजादी। पत्रकार ही सम्पादक, प्रकाशक, प्रूफरीडर, मशीनमैन एवं हॉकर होता था। पत्रकार ही साहित्यकार होते थे। हिन्दी को श्रेष्ठ पत्रकार मिले। समय ने करवट ली। युग बदला और बदली पत्रकारिता। आजाद भारत के औद्योगिक विकास ने पत्रकारिता के आयाम ही बदल दिये। सन् १९७५ के पश्चात इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के प्रदेश से पत्रकारिता ने उद्योग प्रवृति को महत्व दिया। विश्व बाजार, विदेशी कम्पनियों के आगमन को भी पत्रकारिता ने खूब भुनाया। पत्रकारिता व्यवसायिक हो गयी। पत्रकार श्रमजीवी हो गया और सम्पादक का स्थान प्रबंधकों ने ले लिया। पत्रकारिता जगत में एक नई सोच शैली ने जन्म लिया। आज की पत्रकारिता शुद्ध उद्योग है। अतः विज्ञापन पत्रकारिता की शैली है। आज उद्देश्य है विज्ञापन को अधिक से अधिक पठनीय बनाना। अंग्रेजी पत्रों की नकल पर हिन्दी समाचार पत्र भी नये-नये प्रयोग कर रहे हैं। दैनिक आज का 'अवकाश' मध्यान्तरि का प्रकाशन एक ऐसा ही प्रयास था। दैनिक अमर उजाला एवं दैनिक जागरण द्वारा प्रकाशित रूपायन, रंगायन, वातायान एवं सतरंग ऐसे ही प्रयास है। उन पत्र समूहों ने यह नज़रिया जनसत्ता 'सबरंग' सण्डे मेल (साप्ताहिक) की पत्रिका से ग्रहण किये हैं। कौन कितना सफल रहा है और कितना असफल एक अलग प्रश्न है।

अमर उजाला पत्र-समूह के विज्ञापन विभाग की प्रस्तुति 'संगम' का प्रयास व्यवसायिक पत्रकारिता का एक प्रयोग था। विज्ञापन को पठनीय बनाना तथा बाजार की नई तलाश खोजना इसका उद्देश्य था। सम्पादक दिनेश जुवाल ने सम्पादकीय में जीवन का स्वभाव है निरंतर बेहरत की ओर अग्रसर होना... हम योजनाकारों की दिल्ली मैट्रोकल्चर के बहुत करीब होंगे। क्षेत्र के विकास में जुड़े ऐसे लोगों का परिचय संगम का यह अंक देगा। संगम करे साथ-साथ चले। रुहेलखण्ड और उत्तराखण्ड की इस माटी का जोश और विवेक अपनी पवित्रता की राह देगी। वस्तुतः संगठन का मूल उद्देश्य था विज्ञापनों को पठनीय बनाकर पाठाकें के बीच पैठ बनाना।

अतः पत्रिका में तराई के भावर के खेती में उज्ज्वल भविष्य, कुमाऊं में चित्रण परम्परा, खण्डहरों में दफ़न है गौरवशाली अतीत, बरेली एक सरसरी नजर से तथा उद्यमियों का परिचय विज्ञापनों से प्रकाशित थे। अच्छा होता इस पत्रिका में बाहरी लेखकों का सहयोग लिया जाता, मुद्रण को रंगीन तथा उत्तम कागज पर किया जाता। अनेक खामियों के कारण अमर उजाला पत्र समूह दूसरी प्रस्तुति करने में असफल रहा। वस्तुतः यह एक प्रयोग था।

महानगर में इस प्रकार का प्रयोग 'बाजार पत्रिका' ने किया था लेकिन इसमें पठनीय सामग्री की कमी खटकती थी। विज्ञापनदाता ही इसके आधार हैं। आज भी यह पत्रिका पाठक को बाजार से जोड़ने में सक्रिय थी। नई साज सज्जा, चुटकुले, कार्टून लघु कथा, कविताओं तथा स्थानीय जानकारी द्वारा विज्ञापनों को परोसने में बाजार पत्रिका को निःशुल्क वितरित की जाती थी। पाठक पढ़े, समझे और जाने अपने आस-पास के बाजार को। यहीं पैदा होता है, नया उपभोक्ता, बनता है नया बाजार। इस प्रकार की पत्रिका जन सामान्य में पैठ बनाने में कामयाब नहीं रही? फिर भी पत्रिका ने पाठक ओर बाजार को जोड़ने में सफलता हासिल की थी।

वर्तमान में जी.टी.वी. पर नजर आने वाले विनोद कापड़ी के प्रयासों से निकलने वाली पत्रिका 'इकोनामी' बन्द हो चुकी है। अर्थव्यवस्था पर केन्द्रित यह पत्रिका बाजार व्यवसाय पर केन्द्रित थी। बाजार पत्रिका के मुकाबले ये पत्रिका सीमित साधनों के कारण बन्द हो गयी, लेकिन रच गई एक इतिहास। इन पत्रिकाओं के अतिरिक्त दैनिक आज, अमर उजाला, दैनिक जागरण, विश्वमानव, जन मोर्चा एवं दिव्य प्रकाश खुसरो मेल कैन्विज टाइम्स आदि का अपना-अपना नेटवर्क है। विज्ञापन तथा उसकी शैली ही समाचार पत्रों की सफलता असफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। कौन समाचार पत्र समय के साथ चल सकेगा। इसका निर्णय करेंगे विज्ञापन, विज्ञापन शैली तथा उसे जुड़ा बाजार। भास्कर एवं पत्रिका समूह की प्रतिद्वंदता जगजाहिर है। आज हिन्दी समाचार-पत्रों पर हिंगरेजी का प्रभाव देखा जा सकता है। अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग आइनोक्स ऐसा ही प्रयोग है।

गत दिनों महानगर में शीतल ग्रुप समूह द्वारा प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका संवाद केसरी, परिचय अंक (अगस्त ३१ से सितम्बर ६ १९९८) ने व्यवसायिक पत्रकारिता को नया आयाम दिया है। इस पत्रिका का कलेवर परामर्श तैयार किया है। राष्ट्रीय सहारा के अनुभवी पत्रकार माधव कान्त मिश्र ने सम्पादक प्रकाशन की डोर है। डॉ. दीपक अग्रवाल के हाथ में। सम्पादकीय संवाद केसरी महज एक अदद पत्रिका नहीं। पाठक के प्रति पूरी ईमानदारी ही हमारा हथियार है। इस महत्वाकांक्षी यात्रा की शुरू की शुरूआत बरेली, मुरादाबाद एवं कुमायूं मण्डल के जिलों पर विशेष बल देते हो रही है। इस पत्रिका में पहाड़ में प्रलय, मिलावट में मिली मौते, बीहडों में बंद अमनी ट्रेनिंग, तबाही ही तबाही, तनातनो का माहौल, बरेली के फर्नीचर शाकाहार का बढ़ता क्रेज, पहाड़ का पर्यटन उद्योग, पीतल में जंग, भारतीय उद्योग के नये उत्पाद आदि माध्यमों की महत्वपूर्ण जानकारी है। यहाँ पाठकों को उद्योग और व्यवसाय से जोडने का प्रयास ही महत्वपूर्ण है। पत्रिका व्यवसाय के साथ-साथ पठनीय बने यहीं लक्ष्य है। संगम की तरह संवाद केसरी का क्षेत्र भी सीमित है। स्वदेशी की आड़ में बाजार की नई तलाश ही पत्रिका का लक्ष्य है। पत्रिका का बाजार तो भविष्य ही निचित करेगा। अनेक पत्रों की मोटी आय का जरिया विज्ञापन ही हैं। गुटका, तम्बाकू, शराब, तंत्र-मंत्र तथा जवानी की दवाओं के विज्ञापनों में इन्हें कोई आपत्ति नहीं है।

कुल मिलाकर महानगर में बाजार की तलाश जारी हे। उपभोक्ता को कौन कितना पकड़ सकेगा इसका निर्धारण पत्रिकाएँ नहीं बाजार करेगा। और केवल पत्रिकाएँ ही तो बाजार की अन्तिम मंजिल नहीं है। यदि दूरदर्शन-रेडियो द्वारा इस ओर ध्यान दिया जाये तो यह इन पत्रिकाओं को पीछे छोड़ देगा। सरकारी आकाओं ने कभी इस ओर सोचा ही नहीं?

□

लोकगीत की समृद्ध परम्परा

होली, दुर्गा-पूजा, विजय-पर्व, दीपावली तथा गंगा-स्नान का समय हमारी लोकसंस्कृति की विविध रंगीनी, लोक-संस्कृति की जागृति एवं अनुष्ठान के पर्व हैं। यूँ तो लोक-संस्कृति पग-पग पर किसी न किसी रूप में जीवित मिलेगी किन्तु पर्वों पर इसमें निखार आ जाता है। पर्व तथा पर्वों से जुड़े लोकगीत, लोक-संस्कृति का ही अंग है। बिना लोकगीत के किसी पर्व का क्या महत्व ? लेकिन आज रुहेलखण्ड के लोकगीत लुप्त हो रहे हैं। निश्चय ही यह चिन्ता का विषय हैं। टेसू-झाँझी तथा सिमरा-सिमरिया के गीत आज किसे याद हैं? इस प्रकार के गीतों की परम्परा दम तोड़ चुकी है। इन गीतों को फ़िल्मी गीत निगल गये। शहरीकरण की आधुनिक चमक-दमक में आँचलिकता का दायरा सिकुड़ा है। व्यक्ति आत्म केन्द्रित हो गया है। अतः सावन, होली, करवा-चौथ, तीज, नामकरण, अन्न-प्रासन, मुण्डन, जनेऊ, पाटी-पूजन, जच्चा तथा हँसी-ठिठोली के लोकगीत आज आऊट आफ फ़ैशन हैं। ढोलक की थाप तथा मंजीरों की खनन अब सुनाई नहीं देती। धार्मिक तथा सामाजिक विषयों के लोकगीतों में भिन्नता है। समयानुसार अब लोकगीत अनपढ़-गंवार तथा पिछड़ी संस्कृति का प्रतीक हैं। आधुनिक समाज इन्हें स्वीकार नहीं करता। कुछ भी हो लोकगीतों का संबंध नियमों से नहीं लोकजीवन से है। यह स्पष्ट विचारों की अभिव्यक्ति के साधन हैं। मनुष्य की भावनाओं का जहाँ-जहाँ विस्तार है, वे सब लोकगीतों का विषय है।

बरेली के पं. राधेश्याम कथावाचक के नाटकों तथा गीतों में रुहेलखण्ड की लोक प्रचलित शैली की छाप है। गायन में उन्होंने चौबोला पद्धति का प्रयोग किया है। कवि निरंकार देव सेवक ने टेसू गीत लिखे थे। डॉ. सुधारानी शर्मा के लोकगीतों के दो कैसेट सन् 1980 मे रिलीज हुए थे। इसमें सेहरा एवं सोहर

गीत हैं। डॉ. अनीता जौहरी (भूड़ डिग्री कालेज) के शोध का विषय रुहेलखण्ड के मुस्लिम लोकगीतों पर केन्द्रित है। ज्योति शर्मा को मानव संसाधन मंत्रालय से ब्रज, अवध एवं रुहेलखण्ड के लोकगीतों के अध्ययन विषय पर फैलोशिप मिली है। चनेहटी निवासी ओम प्रकाश भैया चर्चित लोक गायक हैं। यह पूर्वी शैली के गायक हैं। टी सीरिज से इनके तीन कैसेट रिलीज हुए हैं–जच्चा गीत, नलदमयन्ती मारु का गौना तथा ढोला गीत। बानखाना निवासी ऐवरन सिंह को लोग भूल गये हैं। इनकी लिखी बारहमासी, मल्हार, सावन गीत तथा रसिया की किताबें चर्चित हैं। यह ढोलक-मंजीरा पर खुद गाकर इन पुस्तकों की बिक्री करते थे। इनका एक चर्चित सावन गीत इस प्रकार है–

''कच्चे नीम की निवौली

सावन जल्दी अइयो रे

× × ×

रडुआ तो रोवैं आधी रात

सपने में देखी कामनी।''

ढोला गायिकी में रिठौरा निवासी ढाकन लाल, प्यारे लाल की जोड़ी प्रसिद्ध है। इन्होंने लोकगीत के साथ-साथ ढोला विशेष रूप में गाया है। टी सीरिज ने इनके चार कैसेट निकाले हैं– नलदमयन्ती हरण इत्यादि। एक समय था जब बरेली में धार्मिक गीतों में हरिओम अंजुम की धूम थी। यह मूलतः जागरणकर्ता थे। इनके लिए गीत रम्मन लाल लिखते थे। रम्मन आज भी जीवित हैं। यहाँ लोक गायकों एवं लेखकों की कमी नहीं है।

रुहेलखण्ड में लोकगीतों की एक समृद्ध परम्परा है। आंगन में रखे गमले में पाले से मुरझाये तुलसी के पौधे को देखकर याद आता है। जब माता जी तुलसी को चूनर चढ़ाती थीं। तुलसी पर जल चढ़ाते समय वे गुनगुनाती। तुलसी के चारों ओर चौक बनाया जाता। देवोत्थान एकादगी के दिन गन्ना, सिंघाड़ा, शकरकंद, बताशा आदि से पूजन किया जाता। देव प्रतीकों की अल्पना बनती। देव स्तुति कर दीप जलाकर गीत गाये जाते। तुलसी-विवाह को लोग आज नहीं गाते–

'नमो-नमो तुलसा महारानी।

नमो-नमो हरि की पटरानी।।''

नवरात्रि में सिमरा-सिमरिया विवाह की धूम रहती। बालिकाएँ फूल चढ़ाती थीं। इन कन्याओं को विशेष सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। भाई इस विवाह की तैयारी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। गली-मोहल्ले के लोग भी इस आयोजन में सहयोग करते थे। वातावरण सजीव विवाह का होता था। इस प्रकार नवरात्रि से लेकर गंगा स्नान तक का समय लोक संस्कृति का युवा काल है। यह लोक कला का अनुष्ठान है। देवी गीतों के विभिन्न गीत यहाँ प्रचलित हैं। पति-पत्नी का हास्य-परिहास, जच्चा गीत, बन्ना-बन्नी या बधाई गीत हो या मुण्डन सभी में लोक संस्कृति की विविधता है। जच्चा गीत में हास्यपुट की झलक–

'जच्चा मेरी भोली भाली री

जच्चा मेरी सीधी साधी री

सास नन्द का लहंगा फाड़े

अपने ससुर की मूँछ जी

जच्चा मेरी लड़ना न जाने री।'

बहुत कम लोगों को मालूम होगा 'बरेली के बाजार में झुमका गिरा रे' फिल्मी गीत के बोल इस लोकगीत के हैं–

'झुमका गिरा रे बरेली के बाजार में

सास मेरी ढूंढे री ससुर ढुंढवा वे

सैंयाय ढूंढे री ओ हों सैंया ढूंढे री

मसाल बाल-बाल के।'

रुहेलखण्ड के लोकगीतों में पौराणिक प्रसंगों के साथ-साथ विविध प्रकार की नारियों का चित्रण भी है। कुछ गीत हास्यपूर्ण भी हैं। ये स्वस्थ मनोरंजन के अच्छे साधन हैं। वस्तुतः लोकगीत रीति-रिवाज तथा सामाजिक मान्यताओं की स्थापना करते हैं। बाल-वृंद में इन गीतों से मस्तिष्क की उर्वरता तथा तर्क शक्ति का विकास होता है। सामाजिक कुरीतियों को भी लोकगीतों का विषय

बनाया गया है। अतः इनकी उपादेयता असंदिग्ध है। यही कारण है इनकी लोकप्रियता में किसी प्रकार की गिरावट की संभावना नहीं है। इनमें जीवन के शाश्वत मूल्यों का विचारोत्तेजक विश्लेषण सन्निहित है। रुहेलखण्ड के लोकगीतों के वर्ण्य विषय मुख्य रूप से पारिवारिक एवं सामाजिक हैं।

होली का बदला लोकरंग–

पर्व- होली। स्थान; महानगर की घनी बस्तियाँ। कंडा-लकड़ी माँगते बच्चों की टोलियाँ। लिपे पुते चेहरे। होली का हुड़दंग करते बच्चों की टोलियाँ- होली खेलने को आये; छोटी छोड़ बड़ी को लाये।' तार के कांटे से टोपी अंगोछा लटकाते दृश्य: टीन के डिब्बे से निकलने वाली कुत्ते की आवाजें। जिसे सुनने वाला भौचक्का हो जाये। सफेद कुर्ता-पायजामा पहने युवा पिचकारियों में केवड़ा-गुलाबयुक्त टेसू रंग तथा माथे पर गुलाल का टीका। महानगर से यह पवित्र दृश्य लुप्त हो गये हैं।

होली-पर्व भारतीय वेलेन्टाइन-डे है। दिल-को-दिल से जोड़ने का पर्व। पास-पड़ोस, घर-परिवार, रिश्ते-नाते, गली-मुहल्ला, धर्म, परम्पराओं, खेत-खलिहान, अमीर-गरीब को एक मंच पर मिलाने वाला पर्व। यह मूल: वैदिक यज्ञ है। कृषि संस्कृति से जुड़ा होने के कारण 'होलिका' तथा 'होला' शब्दों का अस्तित्व सामने आया। होला आग में भुने हुए अनाज को कहते हैं। अनेक प्रकार को आग में भूनकर खाने का चलन आज भी है। पंजाब में यही परम्परा लोहड़ी में देखी जा सकती है। होली शब्द की उत्पत्ति होला (हुल्लिका) से हुई है। आज भी महानगर के लोग होलिका दहन में गन्ना, जौ, चना तथा गेहूं से आखत (आखर) डालते हैं। होलिका-दहन के समय परिक्रमा करके भुने हुए अन्न से आहुति का नाम ही आखर है। होलिका दहन से पूर्व के महानगरीय होलिका दृश्य राक्षसी होली का ही पर्याय है। राक्षसी होलिका का स्वरूप और उससे जुड़ी अनेक अप्रिय घटनाएं उसी अतीत का अंग हैं। कालिख, गोबर, कीचड़ तथा बदरंग रंगों से होली का स्वरूप विकृत हुआ है। बाल-वृद्ध, बीमार तथा महिलाओं के साथ होली में की जाने वाली असभ्य हरकतें राक्षसी-होली ही है। प्रत्येक वर्ष महानगर में होली के पश्चात नेत्र रोगियों का बढ़ता ग्राफ शुभ संकेत नहीं है। फिर भी होली के नाम पर सभ्य समाज में असभ्य हरकतें जारी हैं?

होलिका दहन के पश्चात मनाई जाने वाली ही देव-होली है। होलिका-दहन के पश्चात लोग रंग-गुलाल से दोपहर तक होली खेलते हैं। होलिका तथा प्रहलाद की जय बोलती होली का हुड़दंग करतीं टोलियाँ गली-मोहल्लों में अब नहीं घूमती। मोटर-स्कूटर में सवार लोग टोलियाँ बनाकर केवल आतंक मचाने के लिए निकलते हैं, होली खेलने के लिए नहीं दुलहड़ी केवल हुड़दंग का पर्याय बन गयी है।

मुझे ध्यान है महानगर में होली से पूर्व राम बारात निकलती थी। इस राम बारात में केवल गुलाल, केवड़ा तथा गुलाबजल का प्रयोग होता था। बारात के आगे-आगे चौपाई गाते भक्तों की टोलियां रहती थीं। प्रत्येक के माथे पर गुलाल का टीका। गली-मोहल्लों के लोग फूल-गुलाल की वर्षा द्वारा राम बारात का स्वागत करते थे। जगह-जगह वंदन बार तथा तोरणद्वार। राम-बारात की भव्य शोभायात्रा का जगह-जगह स्वागत होता तथा आरती उतारी जाती। समय बदला और बदला राम-बारात का स्वरूप। यह राम-बारात आज भी निकलती है। आज सड़क के किनारे न टेसू रंगों से भरे कड़ाव मिलेंगे और न उनमें रंग। कहीं-कहीं बदरंग पानी वह भी अशुद्ध। नरसिंह मंदिर बिहारीपुर से प्रारंभ होने वाली यह रंगयात्रा पंजाबी बाजार सिकलापुर, रोडवेज, कालीबाड़ी, श्यामगंज, आलमगीरीगंज तथा कुतुबखाना होती हुई नीम की चढ़ाई पर समाप्त होती है। इस प्रकार की राम-बारात का अनोखा दृश्य आसपास के जनपदों में देखने को नहीं मिलेगा। इस परम्परा में अनेक कुरीतियाँ भी घर कर गई हैं। बड़े प्रेशर के पम्पों से होली-मोर्चा खेलकर किस बहादुरी का परिचय देना चाहते हैं। लोग वसंती या अन्य नशे की आड़ में खेला गया नंगा नाच किस सभ्यता की ओर इशारा है? इसे बदले हुए समय की तस्वीर कहा जाये या परम्परा की लकीर पीटना? लगता है भागदौड़ की जिंदगी में महानगर की मिठास में कड़वाहट घुल गयी है। अत: आज न होली के रंग प्रभावित करते हैं और न लोगों में उसे मनाने का उत्साह है। बसंत पंचमी से लेकर होलिका दहन तक की तैयारियों में जुटी गली-मोहल्लों में बाल-टोलियाँ गायब हैं? मेलजोल का दायरा सिकुड़ा है। दिल को दिल से जोड़ने का पर्व होली व्यापार बन गया है। आज होली पर सब कुछ रेडीमेड है। गुंजियों की सोंधी गंध, सेव, नमकीन, पापड़, मठरी, शकरपारा तथा

अनेक पकवान आज गृहणियाँ बनाना पसंद नहीं करतीं? होली पर्व से जुड़ी लम्बी तैयारी तथा उसकी मधुरता के चर्चे आज नहीं होते। सब कुछ रस्म अदायगी व दिखावा मात्र। फुलेरा दूज, रंगभरी एकादशी, चौक रखना-फूल चढ़ाना होली से गायब हो चुके हैं। लोकपर्व होली का स्वरूप बदला-बदला नजर आने लगा है। महिलाएँ एकत्र होकर होली लोकगीत नहीं गातीं? इनका स्थान फिल्मी गीतों ने ले लिया है। अब कोई नहीं गाता–

'बरसे केसरिया रंग आज बरसाने में
खेले श्याम राधिका होली
संग में ग्वाल-बाल की टोली
छायो फगवा रंग आज बरसाने में।
रंग-अबीर भरी है झोली
छेड़छाड़ और हंसी ठिठोली
नाचत राधा-संग श्याम बरसाने में
जमुना जल है लेत हिलोरे
ग्वाल-बाल सब नाचत गली
हरसित यशोदानंद आज बरसाने में।'

□

वक्त के सीने पर नाम लिखा है

वर्ष 1997 में अनेक साहित्यिक आयोजन हुए। महानगर के मीडिया ने इन आयोजनों को खूब बढ़-चढ़कर प्रस्तुत किया। मंचीय आयोजनों से किस प्रकार का साहित्य निर्मित हुआ। इसकी चर्चा एवं मूल्यांकन किसी ने नहीं किया? धर्मपाल गुप्त शलभ ने समय की धारा (अमर उजाला) के माध्यम से समय-समय पर यहाँ के साहित्य साहित्यकार एवं आयोजनों पर कटाक्ष किए हैं। यह कॉलम चर्चित भी रहा दैनिक 'आज' में महानगर का डेंगूसाहित्य एवं काव्यगोष्ठियों पर दृष्टिकोण कॉलम मैंने भी लिखा, लेकिन यहाँ की गतिविधियों में गम्भीरता उत्पन्न नहीं हुई?

इस वर्ष वयोवृद्ध कवि रवि सारस्वत, डॉ. कृष्णकांत शुक्ल एवं नरेन्द्र कुमार 'सत्य' के निधन से यहाँ का साहित्य-जगत आहत नहीं हुआ? महानगर की एक चर्चित कथा लेखिका की कहानी कई पत्र-पत्रिकाओं में छपी 'धुएं' की इस कहानी लेखिका के विषय में डॉ. संध्या ने लिखा– "उनमें काव्य की गंभीरता और गहराई तो हैं पर वे अपने चौथे कहानी संग्रह तक भी शिल्प एवं भाषा की परिपक्वता एवं प्रौढ़ता तक नहीं पहुँच पाई है।"

महानगर की साहित्यिक दुनिया में केवल निराशाजनक घटनाएँ ही नहीं घटी हैं। बल्कि अनेक ठोस कार्य भी हुए हैं। अत: निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

कथाक्षेत्र में विािष्ट पहचान का नाम है– सुकेश साहनी। इस वर्ष इनकी कहानी 'पेन' काफी चर्चित रही। देह व्यापार की लघुकथाएँ उनका ताजा लघुकथा संग्रह है। देह व्यापार मात्र वैश्यावृत्ति का पर्याय नहीं है। यह एक मानसिकता है। उन्होंने लिखा है– वैश्यावृत्ति के इस विश्वव्यापी तंत्र से जुड़े किस तरह बिना पूँजी का व्यापार करते हैं। देह व्यापार से जुड़े तमाम अच्छे-बुरे पहलुओं

की पड़ताल करती लघुकथाएँ। इस संग्रह में कुल 80 हस्ताक्षर हैं। मूल्य है साठ रुपया।

छायावाद की पताका फहराने वाले कवि ब्रजराज पाण्डेय का नया काव्य-संग्रह आशीष प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। 'गीत गाता हूँ मैं तुम्हारे' का हिन्दी जगत में स्वागत हुआ है। इस काव्य के मूल में है छायावादी मीठी वेदना, भूमिका में कवि ने जीवन के सुख-दुःख की चर्चा की है। पाण्डेय जी का शिल्प छायावादी शैली के निकट है। संग्रह का मूल्य है– एक सौ पचास रुपया। कवि का कहना है–

तुम ज्योति पुंज आराध्य ईष्ट।
मैं तिमिर लोक की रचना॥

(गत दिनों पाण्डेय जी का बीमारी के कारण निधन हो गया।)

डॉ. महाश्वेता ने लगभग सभी विधाओं में लिखा है। कवि तत्व उनका प्राण है। उनका लेखन कितना प्राकृतिक है, कितना प्रायोजित यह एक अलग विषय है, लेकिन साहित्य में साफ-सुथरी छवि के प्रति मुँह नहीं मोड़ा जा सकता है। महाश्वेता के ताजा ग़ज़ल संग्रह (भीगी पलकें बुलाती) को ग़ज़ल कहा जाये या गीतिका? गीत आज बहिष्कृत-सा है। तथा अनेक गीतकारों ने ग़ज़ल की तर्ज पर गीत लिखे हैं। अतः महाश्वेता ने संग्रह की ग़ज़लों को गीतिका नाम दिया है। ध्यान रहे गीत गद्य गीत, नवगीत, गीतिका तथा ग़ज़ल में पर्याप्त भेद है। आशीष प्रकाशन दिल्ली से प्रकाशित ग्रन्थ का मूल्य है– एक सौ पचास रुपया। कुछ भी हो महाश्वेता की कविता-ग़ज़ल-गीतिका आदि में मनुष्य की खुशियों के रंग हैं। महानगर के बिखरे कवियों को एकसूत्र में पिरोने का कार्य किया है। ज्ञानप्रकाश कुमुद ने कवि गोष्ठी आयोजन समिति, बरेली ने कल्याण कुंज (भाग-2) में महानगर के लगभग अस्सी कवियों का परिचय एवं रचनाएँ प्रकाशित किया है।

यह एक महायज्ञ है। पूर्णाहुति में नगर के नवोदित रचनाओं की भागीदारी एक पथ का निर्माण करेगा। संग्रह का मूल्य है– एक सौ रुपया मात्र। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जन्मशती स्मृति ग्रन्थ, अमृत-पुत्र निराला का सम्पादन किया

है डॉ. भगवान शरण भारद्वाज ने। यह ग्रन्थ शोधार्थियों के लिए उपयोगी है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी को ग्रन्थ समर्पित है। आवरण चित्रकार हरिशंकर शर्मा ने तैयार किया है। प्रकाशक प्रकाश बुक डिपो, बरेली तथा मूल्य है एक सौ पचास रुपया। साहित्य-जगत में ग्रन्थ का स्वागत हुआ है।

वर्ष 1997 में महानगर के कई रचनाकारों के ग्रन्थ विलम्ब से प्रकाश में आने की सूचना है। 'तीसरे रावण की मौत' (योगेन्द्र शर्मा), 'बूंद-बूंद की प्यास' (कर्नल वी.पी. सिंह), 'आकाशवाणी वार्ताएँ' (डॉ. कौशल नन्दन गोस्वामी), 'धुएँ के पहाड़ एवं धुएँ की इमारत' (निर्मला सिंह), ग्रंथ विलम्ब सेआये।

सुधीर विद्यार्थी ने शाहजहांपुर से प्रकाशित सन्दर्श पत्रिका ने स्व. निरंकार देव सेवक पर विशेषांक प्रकाशन की घोषणा की थी; जो विलम्व से प्रकाशित भी हुआ। अनिल चेतन दुबे एवं श्रीमती स्वराज शुचि के ग्रन्थ भी विलम्ब से प्रकाशि हुए।

वर्ष 1997 में पत्र-पत्रिकाओं की दृष्टि से चर्चित नहीं रहा। बरेली कॉलेज की स्वर्ण जयन्ती पत्रिका, निर्झरिणी (सम्पादक : हरिशंकर सक्सेना), मंदाकिनी (डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी), संवाद (वीनू सिन्हा), भूमण्डल दर्पण (पूनम भारत) जैसे प्रयास चर्चित नहीं हो सके। दैनिक 'अमर उजाला' के कहानी विशेषांकों से नये वर्ष की साहित्यिक शुरुआत हुई।

मंदाकिनी पत्रिका के ग़ज़ल संग्रह में परिश्रम की गंध है। डॉ. महाश्वेता सम्पादकीय में लिखा– "भ्रष्टाचारियों तथा दुराचारियों के युग में साहित्य ही वह धारदार हथियार है जो ऐसों का सर कलम करने का साहस करता है। मंदाकिनी के ग़ज़ल संग्रह निकालने का यही प्रयोजन।"

हिन्दी दैनिक 'जनमोर्चा' (बरेली संस्करण) के प्रकाशन से बरेली की पत्रकारिता में एक और अध्याय जुड़ गया। 'जनमोर्चा' (प्रवेशांक 6, अगस्त 1997) ने सम्पादकीय में लिखा– "अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग तभी तक सम्भव है जब तक इस देश में लोकतंत्र जीवित है।"

सच्चाई की डगर का 'जनमोर्चा' महानगर की जनता का हमसफ़र नहीं

बन सका? अपने शतांक अंकों की यात्रा पूर्ण करने के पश्चात भी पत्र की कोई पहचान नहीं बन सकी?

कुल मिलाकर महानगर का साहित्यिक मिजाज निराशाजनक नहीं है। आज हमारे आसपास जो कुछ घटित हो रहा है के प्रति सचेत रहने की आवश्यकता है। वर्ष 1997 का अनुभव वर्ष 1998 के लिए आलोक पथ का कार्य करेगा। क्योंकि समय अनुभव को पुष्ट करता है। हरिशंकर शर्मा के लेख पर गीतकार उर्मिलेश शंखधार ने लिखा–

"दैनिक 'आज' में प्रकाशित महानगर का डेंगू साहित्य के अन्तर्गत प्रकाशित आपका समीक्षात्मक आलेख मिला। मैं प्रसन्न हूँ कि इस महानगर में आप जैसे कुछ लोग हैं जो मंचीय और साहित्यिक गिरावट के लिए चिन्तित तो हैं, मैं प्रारम्भ से ही मुशायरा और कवि सम्मेलन के समवेत आयोजनों के पक्ष में नहीं रहा। एक मंच पर दो संचालक और फिर दो-दो मानसिकताओं के कवि और श्रोता। इन दो मुखी परिस्थितियों में कार्यक्रम का सही चेहरा नहीं बन पाता। यही उस दिन बरेली कॉलेज में हुआ। मेरी बात छोड़िये, मेरी तो कवि-सम्मेलनीय जिन्दगी की सबसे खराब प्रस्तुति उस दिन रही। एक तो चार रातों का लगातार जागरण फिर सुबह को ही ज्वरग्रस्त होने के कारण एक हाई पोटेन्सी का एन्टीबाइटिक ले लेने से जो खुश्की चढ़ी, वह मेरे स्वर और कविता चयन को भी संयमित नहीं रख सकी। एक तरह से मैं अद्धांश में भी वहाँ उपस्थित और प्रस्तुत नहीं हो सका। लेकिन कुल मिलाकर इतना बड़ा और मंहगा आयोजन बरेली के सुधी श्रोताओं को उतना कुछ नहीं दे सका, जिसकी अपेक्षा थी, आपकी धारदार दृष्टि इसे पहचान गई, इसके लिए आप बधाई के पात्र हैं।

सुकवि स्व. सेवक जी का अच्छिस्ट बरेली के कई महारथी और सो-काल्ड साहित्यकारों ने उठाया है। इसका अहसान तो दूर इन लोगों ने स्व. सेवक जी के नाम पर कोई विराट आयोजन या साहित्यिक कार्यशाला आयोजित करने की जहमत भी नहीं उठाई, आप ऐसे मुखौटे की जमकर खबर लेते हैं, इसके लिए भी मेरी बधाई स्वीकारें, आशा है सक्रिय हैं।"

(डॉ. उर्मिलेश का हरिशंकर शर्मा को पत्र)

□

साहित्यिक परिदृश्य : सन् दो हजार

महानगर की युवा पीढ़ी के समक्ष साहित्य शब्द का कोई अर्थ नहीं रह गया है। सामान्य रूप से यहाँ जो गोष्ठियों में सुनाया-पढ़ा जा रहा है वह साहित्य नहीं है। जो लिख-छप रहा है उसका साहित्यिक पक्ष कितना सबल है? महानगर की नवधनाड्य संस्कृति ने साहित्य को हानि पहुँचायी है। अब यहाँ साहित्य हाशिये पर है। यहाँ न साहित्यिक अभिरुचि के लोग हैं और न ऐसी साहित्यिक संस्थाएं, जो साहित्य के प्रति निष्ठावान हों। ऐसे दमघोंटू माहौल में यदि कहीं-कहीं साहित्यिक रुचि संपन्न लोग दिखाई पड़ जाएँ तो इस पर सहज विश्वास करना कठिन होगा। सन् 2000 तथा पूरी सदी के अन्तिम पड़ाव पर यह सोचने को बाध्य है, क्या यहाँ आज कुछ टूट रहा है, क्षय हो रहा है। बहुत कुछ सार्थक व नया उभर भी रहा है। साहित्य सृजन से भी कठिन है उसका प्रकाशन। फिर भी कुछ लोग इस मुश्किल कार्य को अंजाम दे रहे हैं। वे निश्चय ही बधाई के पात्र हैं।

आज गद्य की केन्द्रीय विधा है– कथा। इस दृष्टि से सुकेश साहनी एवं खालिद जावेद ने बरेली को राष्ट्रीय पहचान दी है। खालिद जावेद का उर्दू कथा संग्रह– 'बुरे मौसम में' मुंबई से प्रकाशित है। इसमें कुल आठ कहानियाँ हैं। मुस्लिम परिवेश की इन कहानियों में प्रगतिशील दृष्टि भी है। बरेली-कॉलेज के दर्शन-विभाग से शिक्षक जीवन की शुरुआत करने वाले जावेद सात वर्ष की अवस्था में ही लेखन करने लगे थे, यह सफ़र उर्दू दैनिक प्रताप (1976) से शुरू हुआ। इसमें उनकी पहली कहानी प्रकाशित हुई। 'शतपूर्ण' (प्रयाग) तथा 'शायर' (मुम्बई) में उनकी कहानियाँ निरन्तर प्रकाशित होती रहीं। वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में सेवारत हैं लेकिन उर्दू कथा साहित्य में इस पहचान का श्रेय बरेली को है। साहित्यिक सेवाओं के लिए यह नगर सुकेश साहनी का ऋणी रहेगा। नवम्बर माह में अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन का

आयोजन आप ही ने किया। इस अवसर पर विमोचित पुस्तक 'बीसवीं सदी : प्रतिनिधि लघुकथाएँ' का संपादन उन्होंने किया है। जन सुलभ पेपरबैक्स में प्रकाशित यह पहला लघुकथा संग्रह का एक प्रयोग है तथा लघुकथा के ठेकेदारों को एक चुनौती भी। उन्होंने स्वीकार किया– 'ये लघुकथाएँ आम आदमी के दु:ख-दर्द से जुड़ी हैं। रमेश गौतम लघुकथा से नहीं, नवगीत से जुड़े रहे हैं।'

महानगर की साहित्यिक गतिविधियों में लंबे समय तक जुड़े रहने पर भी उनका कोई स्वतंत्र ग्रंथ आज तक नहीं आया। कथा दृष्टि एवं काव्यदृष्टि फोल्डरों का वे अनियमित प्रकाशन कर रहे हैं। नवम्बर माह में 'कथा दृष्टि' फोल्डर का विमोचन लघुकथा सम्मेलन में हुआ था। इसमें 'लघुकथा की कसौटी क्या हो' भगीरथ का महत्वपूर्ण लेख है। निश्चय यह एकल प्रयास सराहनीय है। जिस प्रकार नाटकों के माध्यम से पं. राधेश्याम कथावाचक, बाल साहित्य में निरंकार देव सेवक, भक्ति साहित्य में राघवाचार्य तथा चिंतन-अनुवाद में पं. भोलानाथ शर्मा ने बरेली को राष्ट्रीय पहचान दी। इसी परंपरा में हिन्दी आलोचना में प्रो. मधुरेश ने जनपद को राष्ट्रीय पहचान दी है। इस वर्ष प्रो. मधुरेश के छह आलोचना ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। 'अमृतलाल नागर व्यक्तित्व और रचना संसार' (राजपाल एण्ड सन्स), 'यह जो आईना है' (संस्मरण) रामकृष्ण प्रकाशन विदिशा (म.प्र.) तथा साहित्य अकादमी दिल्ली से 'भैरव प्रसाद गुप्त' सुमित प्रकाशन इलाहाबाद से तीन ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं– 'दिव्या का महत्व' (यशपाल के उपन्यास की समीक्षा), 'मैला आंचल का महत्व' (सम्पादित) तथा 'हिन्दी कहानी का विकास' (नया संस्करण) वे रचना केन्द्रित आलोचना के पक्षधर हैं। परंपरागत आलोचना की दृष्टि से डॉ. भगवान शरण भारद्वाज (बरेली कॉलेज) के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'तुलसी पंचशती स्मृति ग्रंथ' सराहनीय प्रयास है। इसका प्रकाशन प्रकाश बुक डिपो से हुआ है। यह ग्रंथ शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मूल्य है– एक सौ पचास रुपया।

महानगर में वसीम बरेलवी, किशन सरोज एवं डॉ. वीरेन डंगवाल के अतिरिक्त कोई अन्य नाम ध्यान में नहीं आता, जिसने काव्य शायरी में राष्ट्रीय पहचान बनायी हो। इण्डिया टुडे के साहित्यिक वार्षिकी (सृजन–2000) में डॉ. वीरेन्द्र डंगवाल की कविताओं का स्वर मंगलेश डवराल एवं धुनआ भगत

की याद दिलाता है। यहाँ निजी प्रयासों से प्रकाशित काव्य-ग्रंथों का सिलसिला जनवरी माह से प्रारंभ हो गया।

लंबे समय तक बरेली से जुड़े रहे कवि राजदेव प्रियदर्शी की पुस्तकों का विमोचन यही सिद्ध करता है। नितांत वैयक्तिक धरातल पर लिखी गयी कविताओं में कवितापन है। राममूर्ति गौतम गगन के 'बसन्त के आस' दुखान्त काव्य है। 'धूप के शहर में' (ग़ज़ल संग्रह) डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी का दूसरा प्रयास है। आत्मनिवेदन में उन्होंने ग़ज़ल के जिन पक्षों की चर्चा की है। कई मुद्दों पर अहमत भी हुआ जा सकता है लेकिन ग़ज़लों में उन्होंने जो कुछ कहा है, कुशल शिल्पी की पहचान है। कहीं-कहीं वे चूक गयी हैं। ध्यान रहे केवल उर्दू शब्दों के प्रयोग का नाम ग़ज़ल नहीं है। समर्पण में उन्होंने लिखा– 'श्वेता ग़ज़लें उन्हें समर्पित हैं, जिनकी वाणी न ज़ुल्म सहती है।' देखना यह भी है उनकी ग़ज़लों में जो प्रगतिशीलता के गुण हैं, वे शब्द तक सीमित हैं या उसका सम्बंध सामाजिक संघर्ष से है 'सरकार गुनहगार है, कि अखबार गुनहगार है सच तो है कि हमारा ही किरादर गुनहगार है।' डॉ. महाश्वेता के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'मंदाकिनी' (अनियतकालीन पत्रिका) का काव्य एक अच्छी पहल है। यहाँ के रचनाकारों ने निरंकार देव सेवक की काव्य परंपरा को उनकी मृत्यु के पश्चात ही दफ़न कर दिया।

रचनाकार बनने के लिए बाल कवि का ठप्पा लगा होना भी आवश्यक है। महानगर की कई कवयित्रियों के बाल संग्रह इस बात का प्रमाण हैं। उनकी लेखनी वह नहीं लिख रही है जिसकी उर्वरा भूमि सेवक ने तैयार की थी। 'नयी सदी के बालगीत' कृष्णा खण्डेलवाल ने बच्चों के लिए जो कुछ विचार करके लिखा, प्रयास सराहनीय है। बाल-लेखन कैसा हो इस पर विचार ही नहीं किया है। वस्तुतः यह बालगीत नहीं, शिशुगीत हैं। उनके काव्य में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अभाव है 'पहले गीत सुनाया करती, हर घर-आंगन में मां-नानी', 'नयी सदी की कुछ कविताएँ, अब ले आई कनक दीवानी।' सन् 2000 में स्वराज्य शुचि ऐरन के 'युग निनाद' की सूचना है, लेकिन ग्रंथ सामने से नहीं गुजरा। निर्मला सिंह की लघुकथा 'सांप और शहर' का विमोचन लघुकथा सम्मेलन में हुआ लेकिन मुख्य पृष्ठ के अभाव में आम जनता तक नहीं पहुँच सका।

रामप्रकाश गोयल का अभिनंदन ग्रंथ का प्रयास सन् दो हजार व्यतीत होने तक पूरा नहीं हुआ। पत्रकारिता संस्थान के बैनर तले पत्रकारिता दिवस पर 'विविध संवाद' (पत्रकारिता अंक) का संपादन बीनू सिन्हा ने किया है। पत्रकारिता को समर्पित जनपद की एकमात्र पत्रिका है। निर्मला सिंह का नया कहानी संग्रह 'मुट्ठी में बंद खुशबू' नेशनल पब्लिसिंग हाउस नयी दिल्ली से दिसम्बर के अंत तक आने की उम्मीद है।

प्रख्यात शायर प्रो. वसीम बरेलवी हाल ही में अमेरिका प्रवास से वापस लौटे हैं। इस दौरान उनके शायरी के दो संकलनों का विमोचन भी हुआ। हाल ही में प्रकाशित 'औरत आँसू हुई' उनका नया ग़ज़ल संग्रह हैं। इसमें दस वर्ष की शायरी की विकास यात्रा है। 'मेरा क्या नाम' शीर्षक से उनका दूसरा देवनागरी लिपि में है। इस संकलन से हिन्दी के पाठकों को उनको समझने का मौका मिलेगा। ज्ञानवती सक्सेना का नयी गीत संग्रह 'गीत के घर की किरण' आया है। इसमें परम्परागत तथा प्रतीकों का अच्छा निर्वाह है।

आप ख्याति प्राप्त कवयित्री हैं। वनवासिनी सीता, गीत प्रिया, बावरी राधा, राधा की अंतिम यात्रा काव्य कृतियों के पश्चात उनका यह संग्रह सन् 2000 की उपलब्धि है। उन्होंने गीतों में बिम्बों-प्रतीकों तथा अनुभूतियों के धरातल पर बोझिल नहीं होने दिया है। उनके गीत उनकी ही जीवन गाथा है। इस संग्रह में 59 गीत हैं।

□

साहित्यिक सन्नाटे के बीच बनी पहचान

यह सही है कि इलाहाबाद या काशी की तरह बरेली देश की प्रमुख साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र कभी नहीं रहा, पर जब हम शताब्दी में बरेली के साहित्यिक योगदान का समग्र मूल्यांकन करते हैं तो निराशा नहीं होती।

पं. राधेश्याम कथावाचक को बरेली में हिन्दी खड़ी बोली का आदिकवि कहा जाता है। उन्होंने रामकथा को सरल हिन्दी में लिखकर पूरे देंश में बरेली का नाम रोशन किया। पंडित जी का मूल्यांकन मूलत: एक कवि व कथावाचक के रूप में किया जाता है। पंडित जी ने पारसी नाट्य शैली के जरिए इनमें एक नई सांस्कृतिक चेतना प्रकट करने का अविस्मरणीय कार्य किया। पंडित जी के समकालीनों में नाथू लाल अग्निहोत्री 'नम्र' के प्रयासों का उल्लेख आवश्यक है। उन्होंने वनस्थली, नम्रलता, नम्र कुसुम एवं उद्यान आदि कई पुस्तकें लिखी थीं, जिन्हें मैथिलीशरण गुप्त, डॉ. रामकुमार वर्मा और हरिवंश राय बच्चन ने सराहा था।

19 जनवरी, 1918 को बरेली में ऐसी प्रतिभा ने जन्म लिया, जिसने आगे चलकर अपनी रचनात्मकता की ऊर्जा से साहित्य जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया। बचपन के दिनों में हम 'बोल मेरी मछली कितना पानी' गाते हुए खेलते थे। ऐसी न जाने कितनी पंक्तियों के रचयिता से बरेली आकर मिलना मेरे लिए रोमांचित करने वाला अनुभव था। सीधे सरल व्यक्तित्व के धनी निरंकार देव सेवक ने बातचीत करते हुए बाल मन की गहराइयों से उपजी उनकी रचना प्रक्रिया का सहज ही अनुमान हो जाता था। बाल-साहित्य एवं समीक्षा पर उन्होंने 40 ग्रन्थ लिखे।

उर्दू अदब पर निगाह डालें तो बरेली में शायरों और अदीबों की लम्बी फेहरिस्त में कुछ एक ने अपनी रचनाओं के जरिए आवाम को आजादी का पैगाम

भी दिया। वसीम बरेलवी ऐसे शायर के रूप में सामने आए जिन्होंने देश ही नहीं विदेशों में भी शोहरत पाई। हिन्दी में किशन सरोज ने अपने गीतों के जरिए देशभर में खूब नाम कमाया। 'चंदन वन डूब गया' उनकी चर्चित कृति है। वसीम बरेलवी और किशन सरोज उन गिने-चुने रचनाकारों में से हैं जिन्होंने मौजूदा कवि सम्मेलनों के गिरते स्तर के बीच अपनी रचनात्मकता बनाए रखी। कुछ ऐसे कवि हुए हैं जिन्होंने कवि सम्मेलनों के माध्यम से दूर-दूर तक ख्याति पाई, इनमें ज्ञानवती सक्सेना एवं बृजराज पाण्डे प्रमुख हैं।

1970 से 82 तक रहे साहित्यिक सन्नाटे को रामाबल्लभ शर्मा की संस्था नवसाहित्य मंच ने जून 83 में जैनेन्द्र जी के सम्मान में गोष्ठी आयोजित करके तोड़ने का प्रयास किया। इसी के बाद इन्दिरा आचार्य की कहानियों का संग्रह 'ताकि सनद रहे' भी प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कुछ कहानियां धर्मयुग एवं अन्य प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई।

कविता के क्षेत्र में वीरेन डंगवाल बिना किसी शोर-शराबे के गम्भीरता पूर्वक सृजनरत थे। वहीं नवगीत के क्षेत्र में रमेश गौतम काम कर रहे थे। अपनी रचनाओं के प्रकाशन को लेकर दोनों रचनाकार लापरवाह हैं। वीरेन डंगवाल के कविता संग्रह 'इसी दुनिया में' को प्रतिष्ठित श्रीकांन्त वर्मा स्मृति पुरस्कार और रघुवीर सहाय स्मृति पुरस्कार मिले। रमेश गौतम ने हिन्दी के क्षेत्र में नवगीतकार के रूप में अपनी पहचान कराई।

आठवें दशक के अंत में अखिल भारतीय लघुकथा सम्मेलन हुआ जिसमें देश के लगभग 40 कथाकारों ने भाग लिया। यह सम्मेलन इस मायने में महत्वपूर्ण था कि इसमें लघुकथा पाठ और उस पर विद्वान समीक्षकों द्वारा तत्काल टिप्पणी की गई।

उर्दू की यशस्वी कथाकार इस्मतचुगतई यहाँ के गर्ल्स इण्टर कॉलेज में प्राचार्या थी। जिगर बरेलवी को लोग भूल चुके हैं। उनके बेटे राधेमोहन राय ने 'उर्दू साहित्य में हिन्दू साहित्यकारों का योगदान' पुस्तक लिखकर महान कार्य किया है।

हरिशंकर शर्मा साहित्यिक पुस्तकों की समीक्षा और स्वतंत्र भारत के कथा परिशिष्ट के संयोजन से बरेली का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। प्रसिद्ध

साहित्यकार शिवप्रसाद सिंह, प्रभाकर माचवे, विद्यानिवास मिश्र आदि से किए गए उनके साक्षात्कार उल्लेखनीय हैं। प्रेम शशांक, महाश्वेता चतुर्वेदी, सुनील दत्त तिवारी, विष्णु स्वरूप 'पंकज', रमेश चन्द्र श्रीवास्तव, कमलेश भट्ट 'कमल', अरविन्द बेलवाल, रामेश्वर काम्बोज हिमांशु, दामोदर दत्त दीक्षित आदि अपनी-अपनी विधाओं के जरिए बरेली में सृजनरत थे। सुनील दत्त तिवारी का घर लेखकों, पत्रकारों का अड्डा बना हुआ था। यहीं 'कथा दृष्टि' एवं 'अन्वेषण' जैसे फोल्डर के प्रकाशन की योजना बनी और फिर उस पर अमल भी किया गया।

इसके अलावा विभिन्न साहित्यकारों के प्रयासों से बरेली में नागार्जुन, हृदयेश, शैलेश मटियानी, क्षेमचन्द सुमन, डॉ. शंकर पुणतांबेकर, अवध नारायण मुद्गल, चित्रा मुद्गल, शेखर जोशी, भगीरथ, मोहन सपरा, बलराम, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, डॉ. स्वर्ण किरण, जगवीर सिंह वर्मा, गम्भीर सिंह पालनी, अशोक भाटिया, प्रेम जनमजेय और राजेन्द्र अवस्थी जैसे साहित्यकारों के आने से बरेली का साहित्यिक माहौल गरमाया रहा। सुनील दत्त तिवारी और कुछ दूसरे कथाकारों के बरेली से जाते ही यह सिलसिला थम सा गया। नवें दशक की शुरूआत में उर्दू साहित्य को खालिद जावेद के रूप में ऐसा कहानीकार मिला जिसने बहुत कम समय में अपनी प्रतिभा के बल पर साहित्य जगत में अपनी पहचान बनाई। जहाँ तक प्रकाशनों की बात है– 'भ्रमर' को बरेली की पहली विशुद्ध हिन्दी पत्रिका कहा जा सकता है। इसका प्रकाशन पंडित राधेश्याम कथावाचक ने 1922 में कियाथा। इसके सम्पादक रामनारायण पाठक थे। उस दौर के सभी महत्वपूर्ण कवि-कथाकारों की रचनाएं इसमें प्रकाशित होती थीं।

साहित्य जगत में इस पत्रिका के महत्व का प्रमाण इस बात से मिलता है कि भ्रमर ने 1930 में हंस (सम्पादक मुंशी प्रेमचन्द) के प्रकाशन पर उसे अपने सदस्य (ग्राहक) उपलब्ध कराकर सहयोग किया था। एक अन्य पत्रिका 'एकांत' भी निकलती थी जिसका सम्पादन श्यामनारायण बैजल करते थे। सन् 40 के आसपास प्रेमनारायण बैजल द्वारा 'कमल' तथा हरीश जौहरी द्वारा 'मुरलिका' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। पर यह पत्रिका निरंतरता नहीं बनाए रख सकी।

हरिशंकर सक्सेना के सम्पादन में निकलने वाली अनियतकालीन पत्रिका 'निर्झरिणी' ने लघु पत्रिकाओं की दुनिया में अपनी मौजूदगी दर्ज कराई। डॉ. भगवान शरण भारद्वाज के कुशल सम्पादन में 'शोध स्वर', हृदय विकास पाण्डेय के सम्पादन में 'शतदल' एवं रमेश गौतम के सम्पादन में प्रकाशित 'अन्वेषण' एवं 'कथादृष्टि' नामक फोल्डर भी साहित्य जगत में सराहे गए। बरेली की पुरानी साहित्यिक संस्थाओं में साहित्य कला अकादमी, आलोक और मनीषा उल्लेखनीय हैं। आलोक संस्था से सेवक जी जुड़े हुए थे। आलोक और मनीषा की साप्ताहिक गोष्ठियाँ नियमित रूप से हुआ करती थीं। यह संस्थाएँ छठे दशक के अंत तक सक्रिय रहीं। आठवें दशक के प्रारम्भ में निर्झरिणी एवं नवसाहित्य मंच ने बरेली में साहित्यिक जागृति पैदा करने का प्रयास किया। वर्तमान में बरेली में निरंतर सक्रिय संस्थाओं में प्रमुख हैं : हिन्दी व्यवहार संगठन, विवेक गोयल पुरस्कार समिति, अखिल भारतीय बुद्धिजीवी मंच, लेखिका संघ, कादम्बिनी क्लब आदि।

इस महानगर के साहित्यिक सन्नाटे को झकझोरने का धर्मपाल गुप्त शलभ ने महत्वपूर्ण कार्य किया था। समय की धारा एवं 'दौर-ए-गुज़िस्ता' महत्वपूर्ण कॉलमों को वे दैनिक अमर उजाला में नियमित लिखते रहे। हिन्दी-उर्दू और अंग्रेजी पर उनका समान अधिकार था। वे साहित्यिक अनुभवों का पिटारा थे। उनकी मृत्यु के पश्चात सुधीर विद्यार्थी ने अमर उजाला में प्रकाशित 'दौर-ए-गुजिस्ता' लेखों को संग्रह रूप में प्रकाशित करके महत्वपूर्ण कार्य किया है। गत दिनों बरेली के रामप्रकाश गोयल, धर्मपाल गुप्त शलभ, ब्रजराज पाण्डेय एवं डॉ. विपिन सिन्हा ने हमारा साथ छोड़ दिया। नगर की साहित्यिक यात्रा को झटका लगा। समकालीन कविता के हस्ताक्षर डॉ. वीरेन डंगवाल लम्बे समय से कैंसर से संघर्ष कर रहे हैं। उनके स्वास्थ्य की ईश्वर से कामना है।

□

पुस्तकालयों में पाठक

आज मनुष्य को केन्द्र में रखकर आधुनिकता को परिभाषित किया जा रहा है। विश्व ने बाजार का रूप ले लिया है। भूमण्डलीकरण के कारण कला, साहित्य, संस्कृति को साधना के रूप में नहीं बाजार के रूप में माना जा रहा है। धर्म भी इससे प्रभावित हुआ है। इसे पतन कहा जाए या समय की आवश्यकता? आज यह मुद्‌दा उछाला जा रहा है 'पत्रिकाएँ हैं पाठक नहीं, पाठक हैं पत्रिकाएं नहीं, साहित्य और पाठक के बीच बढ़ती दूरी तथा आज पुस्तकों का युग नहीं रहा' इत्यादि। वस्तुतः साहित्य में यह विचार पश्चिम की खिड़की से आ रहे हैं। यह मानव सोच नहीं, प्रेत की सोच है। मानव की गरिमा की बात साहित्य नहीं कहेगा तो कौन कहेगा? साहित्य, पुस्तक और पुस्तकालय एक-दूसरे के पूरक हैं। पुस्तक प्रकाश है और पुस्तकालय प्रकाश स्तम्भ। यदि महानगर के पुस्तकालयों पर विचार करें तो निराशा ही हाथ लगेगी। लेकिन सब कुछ थमा हुआ भी नहीं है।

मुझे ध्यान है महानगर के केन्द्र टाऊन हॉल में चार बड़े कमरे थे। इस भव्य भवन के दो कमरों में नगरपालिका द्वारा संचालित पुस्तकालय-वाचनालय था। इस भवन को पहली बार सन् 1960 में देखा था। सन् 1964-65 में यह भवन खण्डहर हो गया। यहाँ पुस्तकें नगरपालिका के एक कमरे में बंद कर दी गयीं। आज भी यह स्थान टाऊन हॉल नाम से ख्यात है। बरेली गजट में इसी नाम का उल्लेख है। जिले का मुख्य पुस्तकालय होने के कारण आम जनतामें 'कुतुबखाना' नाम प्रचारित हुआ। आसपास का मुख्य बाजार कुतुबखाना नाम से ही जाना जाता है। लम्बे समय तक स्व. लक्ष्मण दयाल सिंघल नगरपालिका के चेयरमैन रहे। उनके ही प्रयास से नगरपालिका का नया पुस्तकालय सन् 1972 ई. में अस्तित्व में आया। इस भवन का उद्‌घाटन तत्कालीन राज्यमंत्री स्व. रामसिंह

खन्ना ने किया था। नई कोतवाली के सामने स्थित पुस्तकालय में तीन हजार पुस्तकों का संग्रह है। पुस्तकालय शायद कभी ही खुलता हो, हाँ वाचनालय में पन्द्रह समाचार-पत्र (हिन्दी-उर्दू-अंग्रेजी) आते हैं। यहाँ सदस्यता का प्रावधान नहीं है। पुस्तकालय प्राय: सायं खुलता है। इस पुस्तकालय पर चिन्ता व्यक्त करते हुए पुस्तकालय अध्यक्ष अशोक अग्रवाल ने बताया कि वर्तमान में भवन के जीर्णोद्धार हेतु कार्यवाही चल रही है। पत्रिका-पत्र का वार्षिक बजट केवल तीन हजार रुपए प्रतिवर्ष है। इस खर्चे में दो पुस्तकालय उपरोक्त के अतिरिक्त बाल्मीकि पुस्तकालय (जाटवपुरा) में कार्यरत है। यहाँ नि:शुल्क पत्रिकाएँ पाठकों को मिलती हैं। यहाँ पुस्तकों का अभाव नहीं पाठकों का अभाव है। आवश्यकता है पाठकों में पुस्तकों के प्रति लगाव पैदा करने की।

महानगर में गद्दीस्थल तुलसीदास की स्थापना सन् 1560 ई. में हुई थी। इस मठ में लगभग पांच सौ ग्रंथों का संग्रह है। ग्रंथों में रामायण, गीता, दर्शन, स्मृति ग्रंथ तथा हस्तलिखित ग्रंथ भी हैं। कल्याणांक की पुरानी फाइलें, हिन्दू पंचके (1920-29 तक) रामांक, कांग्रेस अंक तथा महिला सुधार अंक सहित कई महत्वपूर्ण अंक हैं। मठ के महन्त कमलनयन दास ने बताया 'आज के धार्मिक केन्द्र आय का केन्द्र बनकर रह गये हैं। जबकि पुस्तकालय समाज सेवा का विषय है। इसके लिए निष्ठावान व्यक्ति चाहिए। इस नगर में इसका अभाव है। संस्थान की योजना पुस्तकालय को विस्तार देने की है, ताकि ज्ञान का प्रचार-प्रसार हो। आज धर्मस्थलों में मूर्तियाँ तो हैं, लेकिन पुस्तकें क्यों नहीं? इस मठ में इस गरिमा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया गया है। मुझे ध्यान है कि नया टोला श्रीमती कृष्णा देवी पुस्तकालय सन् 1953 में स्थापित हुआ था। यहाँ बाल-शिक्षा, धर्म, संस्कृति आदि पत्र-पत्रिकाएँ एवं पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। समयानुसार पुस्तकों के प्रति आयी रुचि अभाव के कारण मनोरंजन के नये साधनों ने सब कुछ नष्ट कर दिया। पुस्तकालय सन् 1974 में बन्द हो गया। यहाँ कई पुस्तकालय खुले और बन्द हुए। एक समय आचार्य पीठ (कुंवरपुर) में राघवाचार्यजी का संपन्न पुस्तकालय था। उनकी मृत्यु के बाद सब कुछ बिखर गया। सन् 1965 के आसपास साहूकारा में अग्रवाल धर्मशाला में पुस्तकालय के नए प्रयास हुए, लेकिन सफलता नहीं मिली। किशोर बाजारमें लाला सीताराम

अग्रवाल द्वारा लाला रामस्वरूप सभागार व पुस्तकालय की स्थापना सन् 1992 में हुई। नगर की साहित्यिक कवि गोष्ठियों का आयोजन प्राय: यहाँ होते रहते हैं। यहाँ सीमित मात्रा में पुस्तकें हैं। इसी क्रम में मेजर सुभाष भटनागर मैमोरियल लाइब्रेरी की स्थापना भटनागर कॉलोनी में सन् 1966 में हुई। बाल पत्रिकाएं, समाचार-पत्र तथा कुछ पुस्तकों का अच्छा संग्रह था। पाठक भी आते थे। लम्बे समय तक यहाँ गतिविधियां ठप हैं। स्थानीय उदासीनता भी इसका महत्वपूर्ण कारण है। इस परिवार का कोई सदस्य अब यहाँ नहीं है। वर्तमान में पुस्तकालय भवन पर 'वृद्ध कल्याणम्' का बोर्ड लगा है। ओशो साहित्य का केन्द्र ओशो पुस्तकालय प्रगति नगर गुलाबनगर में सन् 1986 से कार्यरत है। यहाँ का सदस्यता शुल्क पन्द्रह रु. प्रतिमाह है। पुस्तकालय प्रात: आठ से नौ बजे तक खुलता है। यहाँ चार सौ पुस्तकें तथा इतने ही कैसेटों का संग्रह है। बरेली-कॉलेज, वायुसेना तथा आई.वी.आर.आई. के पुस्तकालय सार्वजनिक नहीं हैं। यहाँ ए.एस.सी. स्कूल की संपन्न लाइब्रेरी थी। इस स्कूल के प्रस्थान के साथ केवल यादें बाकी हैं। सन् 1975 के आसपास सदर बाजार में स्थानीय युवकों के प्रयास स्थापित पुस्तकालय लगभग पांच माह बाद ही बंद हो गया। रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय का केन्द्रीय पुस्तकालय केवल कागजों में है। इसके विकसित अस्तित्व की प्रतीक्षा है।

एक समय था जब महानगर के लोगों को पढ़ने में रुचि थी। नगरपालिका तथा जिला पुस्तकालयों में पाठक नज़र आते थे। पत्र-पत्रिकाएँ भी पर्याप्त आती थीं। लेकिन जिला पुस्तकालय के मुख्य द्वार पर अतिक्रमण है। भवन की खिड़कियों के शीशे टूटे तथा अनेक भौतिक सुविधाओं का अभाव है। नगर का कोई व्यक्ति 200 रुपए का राष्ट्रीय बचत पत्र जमा करके पुस्तकालय का सदस्य बन सकता है। कोई अतिरिक्त शुल्क नहीं है। यहाँ लगभग आठ सौ सदस्य हैं। प्रति सदस्य पन्द्रह दिन तक प्रति पुस्तक जारी की जाती है इस प्रकार माह में दो पुस्तकें। वर्तमान में यहाँ का बजट स्वीकृत न होने के कारण पत्र-पत्रिकाओं का आना बंद है। अत: जो पाठक यहाँ आते थे उनका आना भी लगभग बंद है। पूर्व में यहाँ तेरह समाचार-पत्र एवं सत्ताईस पत्रिकाएं आती थीं। यहाँ पुस्तकों का अच्छा संग्रह है। लगभग उन्नीस हजार हिन्दी पुस्तकें, अट्ठारह हजार अंग्रेजी पुस्तकें एवं चार हजार उर्दू पुस्तकों का संग्रह है। सदस्य पुस्तक जारी कराने के

पश्चात चले जाते हैं। जब पाठकों को कुछ पढ़ने को नहीं मिलेगा वे यहाँ क्यों आयेंगे। यहाँ आजादी से पूर्व की एक महत्वपूर्ण पुस्तक थी 'खबर'। इसमें बरेली का इतिहास, कला, साहित्य, संस्कृति तथा बोली आदि की महत्वपूर्ण जानकारी है। यह पुस्तक खोजने पर भी यहाँ नहीं मिली। कई दुर्लभ ग्रंथ पाठकों के अभाव में धूल चाट रहे हैं। पुस्तकालय का समय अपराह्न दो से आठ बजे तक है। यह भवन राजकीय इण्टर कॉलेज परिसर में स्थित है। धार्मिक पुस्तकों की दृष्टि से आर्य समाज बिहारीपुर का पुस्तकालय की चर्चा बिना आलेख अधूरा रहेगा। यहाँ आर्य साहित्य, इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन, वेद, उपनिषद, उपन्यास आदि हैं। राष्ट्रीय सामाजिक जागृति पैदा करना पुस्तकालय का प्रमुख उद्देश्य है ताकि आर्य साहित्य लोगों तक पहुँचे। वेदों के भाष्य, उपनिषद टीकाएं, दर्शन टीकाएं, गीता भाष्य, गौ-रक्षा साहित्य, हिन्दी आन्दोलन का साहित्य, चौधरी चरण सिंह, गाँधी तथा पं. नेहरू का साहित्य भी यहाँ है। यहाँ की व्यवस्था डॉ. सन्तोष कर्णव देखते हैं। पुस्तकालय प्रात: 8 से 10 तक खुलता है। इस अवधि में गिने-चुने पाठक यहाँ आते हैं। वस्तुत आज लोगों में पढ़ने की रुचि का अभाव है। अच्छे पाठकों का अभाव पुस्तकालयों की मूल समस्या है। नगर के कई पुस्तकालयों का अस्तित्व इसी कारण समाप्त हो गया। लेकिन आर्य पुस्तकालय अपना अस्तित्व बनाये हुए है। पाठकों को यहाँ पुस्तकें नि:शुल्क उपलब्ध हैं। संस्थान की योजना सचल पुस्तकालय चलाने की है ताकि साहित्य पाठकों तक पहुँचे। इस दिशा में प्रतियोगिताओं द्वारा प्रोत्साहित करने की भी योजना है। पुस्तकों का अस्तित्व आज भी है और कल भी रहेगा। इसी उद्देश्य से मैदान में डटे हैं।' महानगर के चर्चित केन्द्र खानखाहे नियाजिया में अनेक धार्मिक सामाजिक पुस्तकों का संग्रह है। समस्या है उसके उपयोग की। इसकी देखरेख यहाँ के व्यवस्थापक श्री शब्बू मियां करते हैं। आलमगिरी गंज में खण्डसारी नाथ मन्दिर के सामने स्थित नवजीवन पुस्तकालय का अस्तित्व सन् 1975 के आसपास समाप्त हो गया। सन् 2000 में बरेली-कैण्ट में 'युगवीणा' पुस्तकालय एवं कलादीर्घा का अस्तितव सामने आया। यह नगर की सम्पन्न लाइब्रेरी है। यहाँ पुस्तकें कम्प्यूटर द्वारा जारी की जाती हैं। वर्तमान में यह पुस्तकालय भी संघर्ष कर रहा। महानगर के पुस्तकालयों की यह दुखभरी कहानी है।

□

पुस्तक प्रकाशन व्यवसाय

आज वही महत्वपूर्ण है, जो बिकाऊ है। कला-साहित्य व संस्कृति बाजार का हिस्सा हैं। इंटरनेट ने इसमें पंख लगा दिये हैं। पाठक को अब पृष्ठ पलटने की आवश्यकता नहीं है। बटन दबाते ही सब कुछ स्क्रीन पर आपके सामने, पढ़ने तथा चयन के लिए आप स्वतंत्र है। पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें एकत्र करने की आवश्यकता नहीं है। छोटी-सी जगह में दुनिया भर की जानकारी आपकी मुट्ठी में है। इन उपलब्धियों को भारतीय मीडिया ने प्रचारित किया– 'आज पुस्तकें हैं, लेकिन पाठक नहीं।' वस्तुतः यह विचार पश्चिम की खिड़की से आया है। अत दोहरी स्थिति में पुस्तक प्रकाशक तथा पाठक दोनों ही परेशान हैं।

एक समय था, यहाँ के छोटे जनपदों की पहचान राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशन के आधार पर ही बनी। सन् 1920 में स्थापित राधेश्याम प्रेम से महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए। राघवाचार्य द्वारा स्थापित आचार्य पीठ, पुस्तकालय तथा छापाखाने की पहचान दूर-दूर तक थी। लम्बे समय तक इस प्रेस से आचार्य, संस्कृत समाचार प्रकाशित होता रहा। 'संस्कृति संस्थान' से प्रकाशित पुस्तकों को काफी ख्याति मिली। आज सब कुछ थम सा गया है। वैसे भी बरेली कभी भी साहित्य का बड़ा केन्द्र नहीं रहा। अतः यहाँ पुस्तक प्रकाशन और उसके व्यवसाय का कोई भविष्य नहीं है। यहाँ केवल पाठ्य-पुस्तकों, नोट्स, गैस पेपर तथा जनरल पुस्तकों की खपत है। यहाँ साहित्य से क्या लेना-देना? इस प्रकार का प्रकाशन विशेष तकनीकी, समझ तथा रुचि का विषय है। इस रुचि तथा निष्ठा की यहाँ कमी है। इस उदासीनता के लिए लेखक भी उत्तरदायी हैं। अतः यहाँ प्रकाशन तथा पुस्तक व्यवसाय का कोई भविष्य नहीं है।

इस छोटे से शहर में आशा की किरण भी है। सन् 2001 में 'सुलभ पेपर बैक्स' बरेली ने सुकेश साहनी की लघुकथा संग्रह– 'बींसवी सदी की

प्रतिनिधि लघुकथाएं', 'पैंसठ हिन्दी लघुकथाएं', सम्पादक अशोक भाटिया 'और भी कुछ' : मधुरेश की पुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ किया है। इस प्रकाशन से बड़े प्रकाशकों के कान खड़े हुए हैं। इस प्रकाशन की संचालिका श्रीमती रीता साहनी ने 'हमारी योजना कथा साहित्य का प्रकाशन करना है तथा महंगा साहित्य सस्ते रूप में जनता तक पहुँचे। हमने पाठकों की पॉकेट का ध्यान रखा है। इस समय विश्व कथा साहित्य पर कार्य हो रहा है।' बड़ा बाजार स्थित प्रकाश बुक डिपो की स्थापना सन् 1937 में स्व. ओमप्रकाश सिंघल ने की थी।

वर्तमान में इसका संचालन इनके पुत्र कर रहे हैं– 'आज के दौर में यहाँ लेखक न के बराबर हैं। पाठक अच्छी पुस्तकें पसन्द नहीं करते या यूं कहें कि उनकी जेब हल्की है। यहाँ केवल अनिवार्य तथा शिक्षा संस्थानों की पुस्तकें बिकती हैं। जनरल पुस्तकों का यहाँ अभाव है। हमारा प्रयास है कि इस कार्य में लेखक आयें हम सहयोग के लिए तैयार हैं। प्रकाश बुक डिपो से डॉ. महाश्वेता, डॉ. भगवान शरण भारद्वाज, डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा, डॉ. रिजवी, डॉ. सुरेश चन्द्र गुप्त तथा डॉ. मूंदडा के ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। आधुनिक पंचतंत्र यहाँ से प्रकाशित लोकप्रिय पुस्तक है। अजरा नूर काग जल संग्रह भी यहाँ से प्रकाशित हुआ है।'

वी.आई. बाजार का लोक प्रचलित नाम लाल कुर्ती है। यहाँ का लंदन बुक डिपो की स्थापना श्री मूलचंद ने सन् 1933 में की थी। आज कल संस्थान का संचालन कृष्ण कर रहे हैं। आपका विचार है– 'आज तो बुक ट्रेड ही खत्म हो गया है। हमारा संस्थान बरेली का पुराना संस्थान है। यहाँ देश-विदेश की पुस्तकों का अच्छा संग्रह है।

आप यहाँ अंग्रेजी साहित्य के अतिरिक्त कला, बागवानी डेकोरेशन के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाएँ प्राप्त कर सकते हैं। इस संस्थान से किसी भी पुस्तक का प्रकाशन नहीं हुआ है। सैनिक साहित्य की पुस्तकें भी यहाँ हैं। कैण्ट के महत्वपूर्ण विभाग स्थानांतरित होने के कारण संस्थान की बिक्री पर प्रभाव अवश्य पड़ा है। लंदन बुक डिपो अपनी गुणवत्ता के लिए पहचाना जाता है। बरेली कोतवाली के सामने राज बुक डिपो की स्थापना ताराचन्द अग्रवाल ने की थी। यहाँ विशेष रूप से साहित्य की पुस्तकें उपलब्ध हैं। कवि होरीलाल नीरव के तीन प्रबन्ध

काव्य 'धरती का लोभ', 'झील के किनारे' तथा 'उत्सर्ग' का प्रकाशन हो चुका है। शिक्षा संस्थान की पुस्तकों के लिए यह बुक डिपो अपनी अलग पहचान रखता है। यहाँ से लगभग विश्वविद्यालय स्तर के एक सौ पचास ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं।

वस्तुत: बरेली में पुस्तक प्रकाशन का कोई संस्थान है ही नहीं फुटकर प्रकाशनों का कोई मूल्य नहीं। यहाँ का वैश्य बुक बन्द हो चुका है। यहाँ से अंग्रेजी की पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। बिहारीपुर स्थित स्टूडेंट स्टोर से एम.ए. स्तरीय संस्कृत-अंग्रेजी साहित्य की आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। आज यह संस्थान रामपुर बाग में कार्यरत है। गोयल प्रकाशन आलमगिरी गंज में शिक्षा प्रकाशन गृह नाम से कार्यरत है। रेलवे बुक स्टाल, सर्वोदय पुस्तक भण्डार तथा विद्यार्थी केन्द्र पर भी सामान्य तथा अन्य पुस्तकें उपलब्ध हैं। महानगर के मध्य में सिण्डीकेट बुक हाउस उत्तम संस्थान है। रुचि वैविध्य की पुस्तकें यहाँ उपलब्ध हैं। इस संस्था की नींव सन् 1975 में स्व. रामगोपाल वर्मा ने की थी। संचालिका श्रीमती सन्तोष वर्मा कहती है– 'हमारी कोशिश है पाठकों की रुचि का ध्यान रखना। उसकी संतुष्टि ही हमारी सफलता का राज है। आप यहाँ कम्प्यूटर, हिन्दी-अंग्रेजी की पुस्तकें, शब्दकोश, जनरल पुस्तकें तथा बालोपयोगी पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। कला पुस्तकों का भी यहाँ अच्छा संग्रह है। संस्थान में लगभग बीस हजार पुस्तकें है। यहाँ आने वाला हर पुस्तक प्रेमी निराश होकर नहीं लौटता।' जिस रूप में महानगर का विस्तार हुआ है लोगों के घरों में संपन्नता की वस्तुएँ तो मिल जाएँगी लेकिन बुक कार्नर नहीं। हम भौतिकता की ओर दौड़ रहे हैं पुस्तकों की ओर नहीं। यह दौड़ हमें कहाँ ले जाएगी। यह चिन्ता का विषय है। विहारीपुर के 'जन जागरण प्रकाशन' से बिहारी के सोरठे (डॉ. विनोद रस्तोगी) ; एक यात्रा गधे के साथ (डॉ. विनोद) तथा मेरी रोटी किसने खायी (गोपाल विनोदी) का प्रकाशन के साथ रंजन प्रकाशन बरेली से प्रकाशित पुस्तक 'यमराज हड़ताल पर' से आशाएं हैं।

लेकिन सृजन से जुड़े लोग यहाँ प्रकाशन की उत्तम व्यवस्था न होने के कारण बाहर के प्रकाशन के प्रकाशकों के सामने नत् होने को मजबूर हैं।

□

संगीत जगत की नयी आहटें

महानगर में मनोरंजन-साहित्य की दुनिया के लोग बहुत धीमी गति से इलेक्ट्रॉनिक्स युग में प्रवेश कर रहे हैं। निश्चय ही यह चिन्ता का विषय है। सर्वप्रथम पं. राधेश्याम कथावाचक की एच.एम.वी. ग्रामोफोन, वी.एल. फोन तथा कोलम्बिया ग्रामोफोन कम्पनी ने हाईलाइट किया। यह सिलसिला 1935-60 तक चला। इन तबों (रिकार्ड) में स्वर दिया था– नारायण गोस्वामी (बरेली), मिस दुलारी (लखनऊ), जानकी बाई (इलाहाबाद), रामकृष्ण चौबे (आगरा), गिरजाशंकर चतुर्वेदी, भरत लाल तथा मिस शान्ता एण्ड पार्टी नाटक के रिकार्डों में ड्रामा कम्पनी के कलाकारों ने। पं. नाथूलाल अग्निहोत्री 'नम्र' का गीत ऑल इण्डिया रेडियो पर प्रातः काल गाया जाता था– 'भज ले हरि नाम अरी रसना।' तन नम्र है चोट झिलो न झिली। सन् 1960 से 80 तक यहाँ शून्यता का माहौल रहा। इस बीच कैसेट-रिकार्ड की सूचना नहीं है। मंचीय कार्यक्रमों में लोगों को सफलता मिली। राजमलिक का रिकार्ड प्यार के खातिर सन् 1980 में एच.एम.वी. बैनर तले रिलीज हुआ। इसमें रोमांटिक गीत थे। इन्हीं गीतों का कैसेट 'रिफ्लेक्शन' नाम से जारी हुआ था। गीत गायन– अजीत, राजकमल तथा मीनू कोठारी। सन् 1981 में वीनस कम्पनी का 'मंजलें' (ग़ज़ल) कैसेट आया था, स्वर : मीनू कोठारी तथा संगीत : राजमलिक मलिक। आरती सीरिज (दिल्ली) ने राजमलिक के चार कैसेट प्रस्तुत किये थे– बिल्ली के घर बिल्ली (बारह बालगीत), 'दिल तुझे दिया' (रोमांटिक), 'प्यार की फांस' (ग़ज़ल) तथा 'जयदेव पंचाचूली' (पहाड़ी गीत)। पहले कैसेट का मुखड़ा कवि निरंकार देव सेवक की कविता का है– 'बिल्ली के घर बिल्ली आई' कलकत्ता से दिल्ली आई'। शेष बालगीत कटियार फरूर्खावादी के हैं 'प्यार की फांस' का मुखड़ा वसीम बरेलवी की ग़ज़ल का है। यह गीत-ग़ज़ल पर केन्द्रित है। जयदेव पंचाचूली

में पहाड़ी लोकगीत हैं। यह सब 1999 में रिलीज कैसेट है। तुझे दिल दिया (रोमांटिक) कैसेट में संगीत-राजमलिक का है।

महानगर में कैसेट यात्रा का श्रीगणेश अर्पित कपूर की चाह से माना जा सकता है। इस सफ़र में टी-सीरिज के दो कैसेट 1985 में आये– 'तसब्बुर' तथा 'आईना' (ग़ज़ल) आईना में रामप्रकाश गोयल की ग़ज़लें हैं। संगीत है– खुर्शीद अली खाँ का। इस दौर के कैसेट प्यार मुहब्बत तथा विविध विषयों पर केन्द्रित है। इधर दूरदर्शन पर धार्मिक कार्यक्रमों की लोकप्रियता से लोगों की रुचि बदली है। धार्मिक सीरियल ने महानगर का मिजाज बदला है। अतः रुझान धर्म की ओर बढ़ा है।

इन्हीं स्थितियों की धड़कन को स्थानीय कलाकारों ने समझकर धार्मिक कैसेट रिलीज किया है– 'कभी काशी में कभी मथुरा में।' इस कार्य में स्थानीय प्रतिभाओं का उपयोग हुआ है। यानी पूर्णतया बरेली की हिस्सेदारी-गायन, संगीत, ध्वनि मुद्रण, प्रस्तुति एक बैनर की।

'कभी काशी में, कभी मथुरा में' की प्रस्तुति जयदेव गोस्वामी की है। इसमें कुल सात गीत हैं– प्रथम गीत सुरेश ठाकुर के तथा दूसरी साइड के गीत रामगोपाल तिक्खा ने लिखे हैं। इनके मुखड़े– मैली चादर ओढ़कर, कभी मथुरा में, कभी काशी में, मिलता है सच्चा सुख, जय त्रिभुवन वंदनी रामनाथ सुखदायी, पल से पल में क्या हो जाये तथा इतना तो करना स्वामी। गीतों में परम्परा का निर्वाह है। गीतों के मूल में है भक्ति, आवाज तथा निवेदन। गीतों को स्वर दिया है नवोदित गायिका– क्षमा जौहरी एवं मोनिका मिश्रा ने। संगीत का कुशल निर्वाह एवं निर्देशन सुरेश ठाकुर का है। सधी हुई ध्वनियाँ। ध्वनि मुद्रण-मुद्रक भारतेन्द्र सिंह मिथलेश स्वर संसार स्टूडियों बरेली। हिमानी म्युजिक इण्डिया के बैनर तले इस कैसेट की प्रस्तुतिः जयदेव गोस्वामी की। रामप्रकाश की ग़ज़लों का कैसेट में स्वर दिया है– खुर्शीद ने। इस काल के कई कविता भजन कैसेट टी-सीरिज ने जारी किये हैं। इस क्षेत्र में संघर्ष ही संघर्ष है। स्थानीय लोगों को उतना सम्मान तथा अर्थ नहीं मिलता जितना बाहर के कलाकारों को। कला दर्द उन्हीं के शब्दों में–

"**क्षमा जौहरी** का कहना है– इस कैसेट के सभी गीत राग के अनुरूप

ही है। गीतों में भजन पद्धति निर्वाह है। इस क्षेत्र में आने से पूर्व संगीत की विधिवत शिक्षा मुझे मिथलेश सरवई से मिली। मेरी माता प्रभाकर हैं उनका अनुभव मेरे काम आया है। यही मेरा गायन अनुभव है। गायन की प्रेरणा मुझे मास्टर कृष्ण नारायण सक्सेना से भी मिली है। जब स्वर संगम जयपुर ने सन् 1991 में पुरस्कृत किया– मैं फूली न समायी।'' साहू रामस्वरूप महिला महाविद्यालय में बी.ए. फाइनल की छात्रा क्षमा का कहना है कि मेरे पिता हर्ष कुमार जौहरी, माता– मधु जौहरी का संरक्षण-प्यार ही मेरी मंजिल उमें सहयोगी है। बरेली का संगीत परिवेश ठीक-ठीक है। कॉलेजों में होने वाली स्तरीय प्रतियोगिताएं भी इसी का हिस्सा है।

कुछ ऐसी पीड़ा का एहसास था–

मोनिका मिश्रा– अभ्यास से गायन के क्षेत्र में आयी हैं। वर्तमान में वह कम्प्यूटर शिक्षिका है। बी.एस.सी. के पश्चात् एम.ए. फाइनल बरेली कॉलेज से किया। परिवार में पिता श्री विजय कुमार मिश्रा को संगीत का शौक है। वही प्रेरक है। कभी काशी में, कभी मथुरा में कैसेट टीम भावना का पहला अनुभव है। मोनिका मंच एवं दूरदर्शन से भी जुड़ी रही है। खुर्शीद अली खाँ के साथ भी गायन किया है। 15 अगस्त के कार्यक्रम में जो गीत थे बरेली दूरदर्शन पर मोनिका ने ही गाया है। वह बताती है कि गत् 4 वर्षों से मैं मंच से जुड़ी रही हूँ। मुझे रफी की शाम में गायन का मौका मिला था। 'कभी काशी में, कभी मथुरा में' कैसेट इसी सफलता का परिणाम है। इसके रिलीज होने से मैं आत्म विभोर हूँ।

एस कालरा के भी कई कैसेट आये लेकिन चर्चित नहीं हो सके। इस लेख में अनेक नाम सूचना न मिलने के कारण छूट भी गये हैं। मुझे ध्यान है कि हिमानी म्यूजिक बरेली से आला हज़रत पर केन्द्रित कई कैसेट रिलीज हुए थे। इस विषय की चर्चा फिर कभी करूँगा।

□

कथावाचक परम्परा की गायिकी

पं. राधेश्याम कथावाचक आधुनिकता के साथ-साथ पुरातन के भी पक्षधर थे। ग्रंथप्रकाशन हेतु उन्होंने राधेश्याम प्रेस स्थापित किया। प्रकाशन के पश्चात् उनके कथामंच एवं नाट्य मंच को नयी मंजिल मिली। सन् 1940 के आस-पास कथावाचक की रामायण, नाटक एवं भजन के रिकार्ड तैयार हुए। कथावाचक की रचनाओं पर एच.एम.वी., मेगाफोन, वीएलफोन एवं कोलम्बिया ग्रामोफोन कम्पनी ने रिकार्ड तैयार किये थे। ध्यान रहे इन रिकार्डों में स्वयं कथावाचक जी ने नहीं गाया है। इन्हें स्वर प्रदान किया है नारायण गोस्वामी, मिस दुलारी, रामकृष्ण चौबे, गिरजाशंकर चतुर्वेदी एवं मिस शान्ता एण्ड पार्टी ने। नाटकों में ड्रामा कम्पनियों के पात्रों के स्वर सम्वाद हैं इस तरह कथावाचक जी को बाहर का मंच मिला। रिकार्ड इसी उपलब्धि की एक कड़ी हैं। इससे कथावाचक जी की ख्याति रजबाड़ों, नवाबों तथा रईसों तक पहुँची। रचनाएँ नये फलक, शोहरत मिली। यह साधारण उपलब्धि नहीं थी। पं. राधेश्याम कथावाचक का इलैक्ट्रॉनिक्स युग में प्रवेश का भी यही समय है। रचनाओं को नये आयाम मिले एवं शोहरत मिली। इनके नाटकों का फिल्मांकन नहीं हो सका। कथावाचक जी अपनी किस्मत अजमाने बम्बई भी गये थे, लेकिन वे सफल नहीं हुए। इनके कई गीत पुरानी फिल्मों में अवश्य गाये गये हैं। मेरा नाटक काल में उन्होंने इस विषय पर विस्तार से लिखा है।

पं. राधेश्याम कथावाचक कृत रामायण का महत्व गायन की विशिष्ट शैली है। उनकी रामायण को अन्य लोगों ने भी गाया है। रामायण के रिकार्ड तैयार हुए। बरेली के तैलंग ब्राह्मण (दाऊजी मन्दिर किला निवासी) नारायण गोस्वामी ने रामायण को स्वर दिया। एच. एम. वी कम्पनी ने रामायण के रिकार्ड तैयार किए इसमें नारायण गोस्वामी ने गायन किया हैं। ये डॉ. कौशलनन्दन

गोस्वामी के पूज्य बाबा जी थे। वे उच्चस्वर में गायन करते थे जिस समय रामायण की रिकार्डिंग हो रही थी कलकत्ता में गाँधी आन्दोलन चरम पर था। भारत छोड़ो आन्दोलन के समर्थक गाँधीजी की जय बोलते थे। अंग्रेज पुलिस उन पर अत्याचार करती और गोली चलाती। गोली की आवाज उस भवन में सुनाई पड़ती जहाँ रिकार्डिंग हो रही थी। उनके बाबा कथावाचक कृत रामायण सस्वर उच्च स्वर में गाते थे। उनका स्वर कठोर मगर मधुर था। बार-बार अंग्रेज अफसर-पण्डित जी आप धीरे स्वर में गायें। उच्च स्वर में गाने से मेरी मशीन फट जायेगी। उनका स्वर बुलन्द था। इस आवाज के माध्यम से रामायण की ख्याति नेपाल, बर्मा, भूटान, तिब्बत, श्रीलंका, मलेशिया तथा भारत के नगर-नगर गाँव-गाँव तक पहुँची। कथावाचक-शैली को नया स्वर मिला। यह गायिकी का स्वर्ण-युग था।

एचएमवी कम्पनी नारायण गोस्वामी को एक बार रिकार्डिंग का सौ रूपया भुगतान करती थी। यह बड़ा पारिश्रमिक था। उनकी शेरवानी के बटन अशरफी के थे। वे जब तक कलकत्ता में रहते थे बरेली का ही पानी पीते थे। उनका पानी साथ जाता था। शायद इसका कारण था स्थान-स्थान का पानी गायक के कण्ठ को प्रभावित न करे। नारायण गोस्वामी का चित्र दाऊजी मंदिर में लगा हुआ है। यह न्योछावर रूप में यहाँ रखा गया है। नारायण गोस्वामी ने कथावाचक कृत रामायण के रामबनगामबन, हनुमान-संवाद केवट-राम संवाद, लक्ष्मण-मूर्छा, अंगद-संवाद आदि कथा खण्डों को गाया है। शेष का विवरण प्राप्त नहीं हो सका है।

महिला गायिका मिस दुलारी ने रामजन्म के केवल दो ही रिकार्ड गाये हैं जो मेरे संग्रह में हैं। कथावाचक जी का भजन 'जय जगदीश हरे, जय जगदीश हरे' काफी चर्चित हुआ था। गायिका मिस शान्ता एण्ड पार्टी ने इसे स्वर दिया था। जन ओ फोन कम्पनी ने। एक अन्य गीत गायिका गौरी बाला ने गाया था। ऐ ऐ श्यामसुन्दर......कहा मानों मोहे छेड़ो न' एचएमवी कम्पनी ने एफ टी सीरिज में रिकार्ड तैयार किया था। 'इस तन में रमा करना, उस तन में' गीत गाया था रामकृष्ण चौबे ने। गायक गिरजा शंकर चतुर्वेदी ने 'शरण में आये हैं। गीत को स्वर दिया था। मेगाफोन कम्पनी बम्बई में इनका एक रिकार्ड तैयार किया था।

भिन्न-भिन्न गायकों ने राधेश्याम कथावाचक जी की कृतियों को गाकर अमर कर दिया हैं। इससे कथावाचक जी की शैली को लोकप्रियता एवं विस्तार मिला। बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि कथावाचक जी का नाटक काल जय शंकर प्रसाद से पूर्व का है लेकिन नाट्यशास्त्र में उनके नाटकों का पर्याप्त मूल्यांकन नहीं हुआ। इस दिशा में शोध की आवश्यकता है। कथावाचक जी के चर्चित नाटकों मे से वीर अभिमन्यु बेजोड़ है। कोलम्बिया रिकार्डिंग कम्पनी ने इस नाटक को आठ खण्डों में रिकार्ड किया था। ट्यून ग्रामोफोन कम्पनी ने शकुन्तला नाटक को तैयार किया था। इन रिकार्डों में ड्रामा कम्पनियों के कलाकारों की भागीदारी थी। शकुन्तला नाटक का केवल फ्लैप ही मेरे संग्रह में है। शकुन्तला नाटक के छह भागों की सूचना है।

कथावाचक जी के जो भी रिकार्ड मुझे मिला है वे एक क्रम में नहीं है। मोटे अनुमान के अनुसार विभिन्न कम्पनियों ने उनके लगभग पचास रिकार्ड तैयार किये थे। सबसे अधिक गायन नारायण गोस्वामी ने किया है। विशेष रूप में रामायण खण्डों का। यह बरेली के लिए महान उपलब्धि ही नहीं, यह इलैक्ट्रानिक्स मीडिया का इतिहास लिखा जाएगा उसकी शुरूआत नारायण गोस्वामी के रिकार्ड गायन से मानी जायेगी। महानगर को इस उपलब्धि पर गर्व है।

पं. राधेश्याम कथावाचक के विभिन्न कम्पनियों ने जो रिकार्डस तैयार किये थे, का संक्षिप्त विवरण-

रामायण - गायक नारायण गोस्वामी (बरेली)

रामबनगमन अयोध्याकाण्ड (भाग 2) नं. एफटी 838 वी एल ओ फोन कम्पनी बम्बई

हनुमान सम्बाद (भाग 1-2) नं. 10243 एच एम वी फोन कम्पनी दमदम कलकत्ता

बन-यात्रा (अयोध्या काण्ड) नं. 837 ट्यून ग्रामोफोन कम्पनी

हनुमान-राम-सम्बाद नं. 10244 एच एम वी कम्पनी कलकत्ता

केवट का राम के प्रति प्रेम (भाग 1-2) एच एम वी कम्पनी कलकत्ता

लक्ष्मण मूर्छा (भाग 1-2) नं. '348 एच एम वी कम्पनी कलकत्ता

अंगद-संवाद (तीसरा चौथा भाग) 9067 एच एम वी कम्पनी कलकत्ता।

रामायण (तर्ज राधेश्याम) गायिका मिस दुलारी (लखनऊ)

कथा रामजन्म (भाग-2) एच एम वी पी 9776 बी-3746 कलकत्ता

ड्रामा (वीर अभिमन्यु) कोलम्बिया ग्रामोफोन कम्पनी कलाकार ड्रामा पार्टी

भाग-1 जी.ई. 18039

भाग-2 जी.ई. 18040

भाग-3 जी.ई. 18048

भाग-4 जी.ई. 18042

भाग-5 जी.ई. 18041

भजन (गाना) ऐ-ऐ श्याम सुन्दर गायिका मिस गौरी बाला एवं कहा मानो मोहे छेड़ो न गायिका मिस गौरी वाला एचएमवी ग्रामोफोन कम्पनी कलकत्ता एफ टी 3552

जय जगदीश हरे, जय जगदीश हरे (गायिका मिस शान्ता एण्ड पार्टी)

नं. पी 661 जैन ओ फोना रिकार्ड कम्पनी बम्बई कलकत्ता

इस तन में रमा करना (गाना) रामकृष्ण चौबे एच एम वी 3810 शरण में आये है। (गायक गिरजाशंकर चतुर्वेदी ने एनसी) मेगा फोन कम्पनी।

केवल इन रिकार्डों को ही खोज सका हूँ। शेष की शोध यात्रा जारी है। यह रिकार्डस सन् 1935-47 तैयार किये गये हैं।

सन् 1960 के आस पास सोहराब मोदी ने झाँसी की रानी फिल्म बनाई थी। इस फिल्म के गीत पं. राधेश्याम कथावाचकच ने लिखे हैं। यह पहली इस्टमैन कलर फिल्म थी। सोहराब मोदी के निमन्त्रण पर ही कथावाचक जी बम्बई गये थे। इस क्षेत्र में उन्हें विशेष सफलता न मिलने के कारण वे पुन: बरेली आकर नाटक में सक्रिय हो गये। अभी हाल में योगेन्द्र शर्मा का उपन्यास प्रकाशित हुआ

है– ''रुहेलखण्ड का गाँधी''। इसमें चुन्ना मियाँ के जीवन चरित्र को उकेरा गया है। लेखक ने यहाँ चुन्ना मियाँ और राधेश्याम कथावाचक को दो मुलाकातों का उल्लेख किया है– प्रथम मुंबई जाने से पूर्व की मुलाकात तथा जब वे मुंबई से बरेली वापस आए। इस मुलाकात का मूल स्रोत चुन्ना मियाँ के बेटे के वक्तव्य पर आधारित हैं।

□

शास्त्रीय संगीत की आवश्यकता

ग्वालियर घराने की गायन शैली की विशिष्ट पहचान का नाम है– अवधेश कुमार। तेलगू मूल के ब्राह्मण परिवार में जन्मे बरेली निवासी अवधेश के शास्त्रीय गायन शैली से प्रभावित होकर लोगों ने अनेक समाचार-पत्रों में लेख लिखे हैं। शास्त्रीय संगीत की दुनिया में ग्वालियर घराना इनके बन्दिशों का तीर्थ है। इनकी संगीत सुरसिंगार संसद द्वारा 'सुरमणि' की उपाधि प्रदान की गयी। श्री हरिदास संगीत सम्मेलन में आपकी उपस्थिति ने जनता का कई बार दिल जीता है। स्वरों की कल्पना प्रधान प्रस्तुति, बंदिशों का पूर्ण निर्वाह तथा ताल में रागों की शुद्धता अवधेश के शास्त्रीय गायन की विशेषता है। अ.भा.गा.सं. महाविद्यालय मंडल मुंबई द्वारा के. सुशील वाईगान पुरस्कार 1998 में प्रदान किया गया।

अवधेश गोस्वामी अपनी शास्त्रीय शिक्षा का प्रथम गुरु पूज्यपिता श्री नंदन गोस्वामी को मानते हैं। इस यात्रा में डॉ. तुलसी देवांगन तथा आर.सी. भट्ट का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। अत: ये तीनों ही इनके संगीत गुरु है। अवधेश संगीत शिक्षा में गुरु-शिष्य परम्परा के पक्षधर हैं। आपका विचार है कि आज विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षा का पर्याप्त माहौल नहीं है। विद्यार्थी का उद्देश्य सिर्फ़ डिग्री प्रापत करना है। वह संगीत में समय नहीं लगाना चाहता है। शर्मा जी संगीत जीवन का दर्पण है। साधना है। यह मनोरंजन की वस्तु नहीं है। संगीत का महत्व बढ़ा है। इसमें चिकित्सा का आधार भी खोजा जा रहा है। संगीत का महत्व आज भी और आगे भी रहेगा।

आज के बदले हुए परिवेश में शास्त्रीय संगीत के प्रति लोगों की रुचि कम हो रही हैं। अवधेश इस बात को लेकर दु:खी नज़र आये। आज संगीत सीखने वाले इसे कलारूप में ग्रहण कर रहे हैं। यहाँ पहले संगीत गोष्ठियाँ होती

थी। बलदेव संगीत महाविद्यालय, गंधर्व संगीत महाविद्यालय तथा अन्य संगीत संस्थाएँ आयोजन करते थे, लेकिन अर्थाभाव में सब कुछ बिखर गया। शास्त्रीय संगीत के प्रति उदासीनता के कारण ही यहाँ संगीत का माहौल नहीं है। बरेली महोत्सव में शास्त्रीय संगीत आयोजन क्यों नहीं होते हैं?

अपने ही शहर में अंजान है 'सुर शिरोमणि' अवधेश कुमार गोस्वामी। स्थानीय विद्यालय ए.एस.सी. में संगीत शिक्षक पद पर कार्यरत अवधेश का कहना है– शर्मा जी यहाँ निजामुद्दीन, मुस्ताक अली तथा सुनीता सहगल जैसी संगीत हस्तियों ने अपने करियर की शुरुआत की है। आजीविका की तलाश में प्रतिभावान कलाकार नगर छोड़कर चले गये। उन्हें यहाँ स्थान नहीं मिला। यह इस नगर का दुर्भाग्य ही है। इस शहर में किसी ने इन्हें नोटिस में नहीं लिया? अवधेश कुमार भी यहाँ इसी गुमनामी का जीवन जी रहे हैं। वे स्थानीय स्तर पर इस कला की महफिलों से अंज़ान हैं एवं जुदा हैं। आजकल आप गायन की नयी पीढ़ी तैयार करने में लगे हैं। स्वर संगीत के परम्परा ने ही उन्हें संगीतज्ञ-गायक बना दिया है। वर्तमान में दाऊजी मन्दिर किला में इनकी साधना स्थली है।

संगीत की विभिन्न विद्याओं एवं विचार-विमर्श में उन्होंने कहा– बरेली के खान-खा-ए-नियाजिया' में आयोजित संगीत कार्यक्रमों से जनता में संगीत की रुचि बढ़ने के साथ-साथ बड़े कलाकारों को सुनने का मौका मिला है। यह महानगर का सौभाग्य है। संगीत का कोई धर्म या मजहब नहीं होता। संगीत में राग-रागनियाँ आत्मा की बात कहती हैं। स्वर ही इनका देवता है। अच्छा होता महानगर की अन्य धार्मिक-सामाजिक संस्थाएँ भी इस दिशा में सोचती। ताकि नई पीढ़ी को दिशा मिल सके। श्रोताओं में संगीत की समझ वढ़े तथा नगर में संगीत का माहौल बने। एक अच्छा शिष्य किसी भी संगीतज्ञ की जीवन भर की पूँजी बन सकती है। ग्वालियर घराने के गायक अवधेश का अपना अलग ही अंदाज है।

अवधेश मानते हैं कि ग्वालियर घराना एक प्रकार से ठेठ गायकी है। प्रयुक्त बंदिशों, आधार, गमक की ताने तथा जोरदार तानें आदि आधारों पर ग्वालियर घराना अन्य घरानों से अलग पहचाना जा सकता है। एक संवाद में

उन्होंने स्वीकार किया– आज की युवा पीढ़ी फिल्मी संगीत की दीवानी है। उसके सिर पर पॉप चढ़कर बोल रहा है। इन्हें समझना आसान है। लेकिन शास्त्रीय गायन के लिए अभ्यास तथा लम्बी साधना चाहिए। आज सीखने वाला यह सब करने को तैयार नहीं है। शहर से बाहर इनका गायन परिचय का मोहताज नहीं है। बम्बई, जयपुर, गुजरात आदि स्थानों की प्रस्तुतियों में श्रोताओं के दिलों पर छाप छोड़ी है तथा इस नगर का नाम भी रोशन किया है। रामपुर आकशवाणी से इनके गायन प्रसारित होते रहे हैं। बरेली दूरदर्शन की दृष्टि इन पर कब पड़ेगी?

नये कलाकारों के प्रति आपका मानना है कि संगीत को साधन मानकर वे आगे बढ़े। चमक-दमक के बल पर स्थान नहीं बनाया जा सकता है। छोटे रास्ते मेंअपनी मंजिल पर नहीं जा सकती। आज रुचियाँ बदली हैं। शास्त्रीय संगीत के स्थान पर पाश्चात्य संगीत का शोर बढ़ा है। यह चिन्ता का विषय है। भारतीय संगीत सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की ओर ले जाता है। दूरदर्शन पर शास्त्रीय संगीत का स्वतंत्र चैनल होना चाहिए ताकि कलाकारों को अधिक से अधिक मौका मिले। आज नहीं तो कल समय हमारे पक्ष में होगा। केन्द्रीय विद्यालय जाट सेण्टर के हिन्दी शिक्षक डॉ. दिवाकर शर्मा ने दाऊजी मंदिर की संगीत परम्परा पर एक पुस्तिका सन् 2012 में प्रकाशित की थी। यह संगीत विरासत की झाँकी भी है और संगीत की विकास यात्रा भी। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में आलोक बनर्जी के नाम को कैसे भूल सकते हैं। शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में उनके बिना यात्रा अधूरी ही रहेगी। यहाँ शास्त्रीय संगीत की स्थिति निराशाजनक नहीं है। तीनों महाविद्यालयों में संगीत पर शोध कार्य शुभ संकेत हैं।

□

संगीत का नख़लिस्तान

संगीत साधना है। तपस्या है। नाद-अनाहद का अटूट सम्बन्ध है। यह एक ऐसी नदी है जिसमें डूबने पर आनन्द ही आनन्द, डुबकी न लगाने वाला अधकचरा है। संगीत साधिका डॉ. सुधा रानी शर्मा जीवन के सत्तर बसन्त पार कर चुकी हैं। वे संगीत में आज भी गतिशील हैं। काशी संगीत-कला-साहित्य की भूमि है। इस धरती पर सन् 1930 में जन्मी डॉ. सुधा की आरम्भिक संगीत शिक्षा नानी श्रीमती गोमती देवी की गोद में हुई। जब मैं बच्ची थी मेरी नानी मुझे भोजपुरी लोकगीत सुनाती थी। इन्हीं गीतों के प्रभाव से प्रेरित होकर जब मैंने अपनी शिक्षा-दीक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से प्राण्रम्भ की। मैंने अपने शोध का विषय चुना अप्रचलित राग-रागनियों का विशेष अध्ययन एवं भोजपुरी लोकगीतों में संगीतात्मकता का शास्त्रीय अध्ययन मेरे गुरू पं. ओंकार नाथ ठाकुर के नेतृत्व में मेरी साधना को नई दिशा मिली। संगीत शिक्षा के साथ-साथ थियेटर तथा कार्यशालाएँ उनके लोकप्रिय विषय रहे। उनके व्यक्तित्व में संगीत-काव्य का अपूर्व संगम है। शायद संगीत की गायन-शैली ने ही आपको काव्य की ओर प्रेरित किया है। उनकी कविताओं में नारी-मन की व्यथा-कथा ही नहीं एक दूरदर्शित भी है। आजकल आप 'संगीत शब्द कोश' प्रकांशन में संलग्न हैं। यह शब्दकोश संगीत जगत की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

डॉ. सुधा रानी शर्मा ने साहूराम स्वरूप महाविद्यालय में अपसनी संगीत सेवाएँ सन् 1968 से प्रारम्भ कीं। इससे पूर्व वे दिल्ली की एक संस्था से जुड़ी थी। मेरे एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने बताया 'मेरे यहाँ आने पर मुझे लोगों में संगीत के प्रति आस्था एवं श्रद्धा का बोध नहीं दिखा। उस समय बहुत कम छात्राएँ संगीत लेती थीं। धीरे-धीरे सीमाएँ टूटी। स्नातक स्तर पर अच्छी स्थिति नहीं थी। यहाँ संगीत के प्रति उदासी वातावरण था। संगीत की अपेक्षा साहित्य का

वातावरण था। मैं काशी की बेटी हूँ। वह संगीत में रचा-बसा शहर है। मेरी शिक्षा का केन्द्र काशी रहा है। यहाँ संगीत का वातावरण हैं। यहाँ के मन्दिरों, घाटों तथा नगरी नाटक मण्डली में आये दिन संगीत आयोजन होते रहते हैं। बरेली की संगीत दुनिया में नख़लिस्तान ही है। पहले के लोगों ने कुछ प्रयास अवश्य किए हैं। जितेन्द्र महाराज की शिष्याएँ नलिनी-कमलनी इसी नगर की देन हैं।

डॉ. सुधारानी शर्मा मूलतः गायन की साधिका हैं। उनके दिशा-निर्देश में लगभग तीस छात्राएँ संगीत में शोध कर चुकी हैं। डॉ. कान्ता कालरा, डॉ. साधना मौर्य, डॉ. ज्योति शर्मा. डॉ. अल्का अवस्थी, डॉ. रेखा शंखधार, डॉ. अंजना चटर्जी, रेखा तिवारी तथा डॉ. अमृत हसरे ऐसे नाम हैं जिन्होंने संगीत में अपनी पहचान बनायी है। ये प्रतिभावान शिष्याएँ विभिन्न संस्थाओं में सेवारत हैं। समय-समय पर अच्छे कलाकारों को बुलाकर गोष्ठी-संगीत सम्मेलन भी किये। इससे वातावरण तो बना लेकिन कलाकार नहीं बने। इन आयोजनों का उद्देश्य था कि महानगर में रसिक श्रोता पैदा हों जो शास्त्रीय संगीत को पसंद करें। डॉ. रामावल्लभ शर्मा, श्यामनारायण मेहरोत्रा कुछ ऐसे नाम हैं जिन्होंने इसमें विशेष रूचि दिखायी। इन गतिविधियों से प्रेरित होकर कई संगीत संस्थाओं का जन्म यहाँ हुआ। संगीत कार्यक्रमों में बढ़ोत्तरी हुई। लोगों ने अपने-अपने स्तर से कार्यक्रम किए। डॉ. सुधा रानी शर्मा अपने अनुशासन तथा व्यक्तित्व कृतित्व के लिए आज भी चर्चित हैं। आज से पच्चीस वर्ष पूर्व की डॉ. सुधा तथा वर्तमान की डॉ. सुधा में मैंने अन्तर अनुभव किया। इनके पति स्व. श्रीकृष्ण चन्द्र शर्मा उ.प्र. गुप्तचर विभाग में एक ईमानदार अफसर के रूप में चर्चित रहे।

महानगर में कोई संगीत घराना नहीं है। अतः बरेली नगर की घराने के रूप में कोई पहचान नहीं बन सकी। बाहर से आये कुछ लोगों ने यहाँ संगीत को जीवित बनाये रखा है। इस दिशा में गोस्वामी परिवार तथा इक़बाल खाँ ने विशेष कार्य किया है। अनीता पाण्डेय ने गायन में विशेष पहचान बनायी है। वह मेरी शिष्या है। डॉ. कान्ता कालरा साहूरामस्वरूप महाविद्यालय में सेवारत है। शर्मा जी जहाँ तक घरानों की बात है रुहेलखण्ड मण्डल में रामपुर घराना में आचार्य बृहस्पति ने शास्त्र में अच्छा कार्य किया है। इसी घराना के गुलाम मुस्तफा ने प्रयोगात्मक क्षेत्र में विशेष कार्यर्क किया है। सहसवान घराना में हॉफिस

रहमत खाँ ने विशेष कार्य किया है। बरेली के ख़ान-ख़ाहे नियाज़िया में आयोजित संगीत सम्मेलन महानगर की महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस प्रकार के अन्य आयोजन भी होना चाहिए तभी संगीत की समझ-परिवेश निर्मित होगी। यहाँ के किसी घराना या परिवार ने मुझे प्रभावित किया या नहीं-लेकिन अदायगी प्रभावित करेगी ही। चाहे वह रामपुर घराने की हो या सहसवान घराने की। वह कहती है यहाँ संगीत का माहौल नहीं है। जहाँ तक कलाकारों की बात है वह विशेष नज़र नहीं आ रहा है ।परीक्षा पास करना अलग बात है और कलाकार के रूप में स्थापित होना अलग। कलाकार की पृष्ठभूमि में यहाँ कुछ नया नहीं दिखायी दे रहा है। शास्त्रीय संगीत साधना की वस्तु है। यहाँ न तो संगीत का शिक्षण ही हो रहा है और न वातावरण। यहाँ न तो विश्वविद्यालय प्रयासरत है और न सामाजिक प्रोत्साहन, न व्यक्तिगत निष्ठा। अतः शून्यता-ही-शून्यता है। प्रसंगवश रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय में 'युवा महोत्सव' अवसर पर जो संगीत प्रतियोगिताएँ हुई उसके निर्णायक मण्डल में कौन ऐसा था जिसको संगीत का समझ एवं शिक्षा ली हो। जब तक आयोजनों में यह घालमेल चलेगा। प्रतिभाओं को दिशा मिलेगी? यहाँ के लोग प्रतिभाओं को नहीं पहचानते और न वे इसमें कोई दखल रखते हैं। उन्हें मंच और मंच से जुड़ा नाम चाहिए। संगीत गुरु-शिष्य परम्परा की धरोहर है। इसमें अपूर्ण एवं अधकचरा ज्ञान रखने वाले लोग प्रदूषण फैला रहे हैं। प्रतिभाएँ डिग्री की मोहताज नहीं होती। अच्छे गायक को लगनशील होना चाहिए। यह यह कार्य अच्छे गुरू के मार्गदर्शन में किया जा सकता है। मैं यहाँ फिल्मी गायकी की चर्चा नहीं कर रही हूँ। शास्त्रीय गायन पवित्र यात्रा है। वागेश्वरी की आराधना है। गत् दिनों आपकी मृत्यु से संगीत जगत दुःखी है। यह साक्षात्कार अप्रैल 2000 में लिया गया था।

□

छोटा पर्दा-बड़ा पर्दा पर बरेली

इन दिनों उ.प्र. सरकार फ़िल्म उद्योग पर मेहरबान है। अतः छोटे पर्दे के कलाकार, लेखक एवं निर्देशक भी सक्रिय हुए हैं। इस महानगर में भी छोटी फ़िल्मों का कारोबार फूलाफला है। यहाँ निष्ठावान लोग भी है लेकिन ऐसे लोग भी है जो इसकी आड़ में गोरखधंधा कर रहे हैं। आज महानगर में रंगमंच के कलाकार दूरदर्शन (टेलीफिल्म) की ओर दौड़ रहे हैं। इसका कारण है आज नाटकों में दर्शक नहीं हैं। लम्बा रिर्हसल एवं प्रोत्साहन की कमी भी आड़े आती है। शो के डोनेशन कार्ड या टिकिट लेकर नाटक नहीं देखना चाहते। अतः इसमें पैसा और समय की भी बर्बादी के अतिरिक्त और कुछ नहीं टेलीफिल्म में यह सब कुछ नहीं। ध्यान रहे इसके मूल में रंगमंच ही है। यह एक विधा है। आज सब कुछ व्यावसायिक हो गया है। समयानुसार नाट्यकर्मियों ने स्वयं को बदला है। यहाँ के नाट्यकर्मियों में चाहत है कई लोगों ने विशेष योगदान भी दिया है।

यदि महानगर के छोटे पर्दे की ओर नज़र करें उसमें आशाएँ ही आशाएँ हैं। सन् 1988 में यहाँ पहली बी.डी.ओ. फिलम 'अंधेरे उजाले' बनी है। लेखक निदेशन है– मल्लीनाथ निवासी राकेश यादव का। दूसरी फ़ीचर फ़िल्म 'लालच' है। इसमें गोराघोष महावीर राना, राधारानी नौटंकी वाली तथा के.एस. शर्मा की भूमिकाएं थीं। पं. फतेहगंज निवासी सुरेश ठाकुर इस क्षेत्र में गत दस वर्ष से सक्रिय है। 'यथार्थ' का लेखन इन्होंने ही किया है। आज यह एच.टी.वी. पर लगी है। निदेशन संदीपन बी. कान्त ने किया है। बी.बी. बीस लाख की, (बी.डी.ओ. फिल्म) को दिल्ली दूरदर्शन के लिए 'धुंधली सुबह' नाम से किया गया है। सुरेश ठाकुर की फीचर फ़िल्म 'काली छाया' असफल रही। वे आज भी संघर्षरत हैं।

वर्तमान में महानगर के कलाकारों ने टेलीफिल्म 'हादसा' में महत्वपूर्ण

भूमिकाएं अदा की हैं। पूरनपुर (पीलीभीत) निवासी ब्रजेन्द्र सक्सेना की इस फ़िल्म की निदेशन लेखन किया है रंजीत वालिया ने सूटिंग अक्टूबर माह में सम्पन्न हुई है। पूरनपुर में बरेली के भारतेन्दु सिंह, रतना वर्मा, एवं कान्ति कुदेशिया की महत्वपूर्ण भूमिकायें हैं। रंजीत वालिया द्वारा लिखित लालालप्पा, (हास्य-व्यंग्य) फ़िल्म बरेली-दूरदर्शन से, दो कड़ियों में प्रसारित हुई। इसे खूब सराहा गया। यह लखनऊ दूरदर्शन से भी प्रसारित होने की संभावना है। महानगर के वरिष्ठ साहित्यकार रामप्रकाश गोयल के उपन्यास टूटते सत्य पर आधारित फ़िल्म के प्रयास सफल नहीं हुए? इसकी पटकथा शाहआलम ने लिखी थी।

'यथार्थ' दहेज समस्या पर केन्द्रित फ़िल्म है। पुर्नजन्म के विचारों को अंजाम देती भारतेन्दु सिंह की फिल्म पुर्नमिलन को 1985 में पुरस्कृत किया गया। वी.डी.ओ. फिल्म आयोजन में नक्षत्र नाट्य संस्था की महत्वपूर्ण भूमिका थी। टी.वी. फिल्म 'लोथरा' को लिखा था रंजीत वालिया ने इसे नटराज ग्रुप ने प्रस्तुत किया था। उपजा प्रेस क्लब में शान्ति का फिल्म प्रीमियम शो बड़े वैनर के फिल्मी अंदाज में सम्पन्न हुआ। यहाँ के अशोक ने मां पूर्णागिरि महानगर के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों तथा अहिच्छत्र पर सूचनापरक वी.डी.ओ. फिल्म बनाई है। बरेली दूरदर्शन इन्हें प्रसारित भी कर चुका है। महानगर के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों पर केन्द्रित फिल्म की अगली कडियों को गलत सूचनाओं के कारण रोक दिया गया। यह नदीम अनवर द्वारा निर्देशित 'सुनहरा सपना' परिवार नियोजन पर केन्द्रित थी। 'लोथरा' की पृष्ठभूमि महिला शोषण पर केन्द्रित थी। लेखक थे रंजीत वालिया पटकथा लिखी थी नदीम अनवर ने। सन् 1990 के बी.डी.ओ. फिल्म समारोह में इसे प्रथम पुरस्कार मिला था। 'हरा सोना' (गोराघोष) के प्रयास सफल नहीं हुए। यह पर्यावरण पर केन्द्रित फ़िल्म थी।

महानगर के चर्चित नाटककार पं. राधेश्याम कथावाचक अपने नाटकों के फिल्मांकन की दृष्टि से असफल होकर बम्वई से लौट आये थे। एच.एम.वी. ने उनकी रामायण के रिकार्ड अवश्य जारी किये थे। लम्बे समय पश्चात महानगर में दूरदर्शन के जन्म के साथ ही यह भ्रम पैदा होना स्वाभाविक है कि यहाँ के साहित्यकार टेलीफिल्मों तथा सीरियलों के लिए क्यों नहीं लिख रहे हैं। क्या यह दूरदर्शन साहित्य के लिए खतरा है? यह आशंका कि दूरदर्शन की आँधी में

ज्यादातर लेखक अपना सृजनात्मक लेखन छोड़कर पटकथा लेखक बन जायेंगे। लेकिन महानगर में दूरदर्शन की क्षेत्रीय पहचान के लिए आगे आते, वे फिल्में क्यों लिखते, लेकिन उल्टा यहाँ प्राप्त सुविधाओं का आलम यह है कि जो इस कार्य को अंजाम दे रहे हैं वे भी उदासीन हो रहे हैं। इसे रचनाधर्मिता की कमी माना जाए या दूरदर्शन, क्षेत्रीय रचनाकारों के तालमेल का अभाव? क्या यह माना जाए कि यहाँ के रचनाकार रचनाओं के फिल्मांकन विरोधी है या इसके ग्लेमर, उसके पैसों से असम्पृक्त कोई साधु-संन्यासी। क्या उसे यह माध्यम घटिया लगता है। वे इसमें कोई योगदान नहीं करना चाहते। इसमें कोई बात सही नहीं। लेखक को ग्लेमर, पैसा और रचनाओं का फिल्मांकन चाहिए। लेकिन जुगाड़ केवल पर दूरदर्शन उनके पास नहीं पहुँचता, वे पहुँचाते हैं दूरदर्शन के पास। अतः यहाँ के लेखकों की पर्याप्त भागीदारी नहीं हो सकी। दूरदर्शन का न तो विस्तार ही हो रहा है और न क्षेत्रीय लेखकों को काम। अतः यहाँ के समर्पित रचनाकारों ने टेलीफिल्म लेखन की ओर कूच नहीं किया। क्या कारण है कि रेडियो एवं दूरदर्शन केन्द्र सांस्कृतिक केन्द्र के रूप में विकसित नहीं हुए? वे माहौल बनाने में असफल रहे हैं। प्रशासनिक एवं क्षेत्रीय राजनीति के कारण इसे शैशव में ही जवानी का रोग लग गया। जब तक दूरदर्शन से साहित्य बेदखल रहेगा यही स्थिति बनी रहेगी। इस महानगर का कोई भी लेखक फ़िल्म लेखन में नहीं ढल सका है। अतः उसे व्यावसायिक लाभ भी नहीं पहुँचा है। आज भी समर्पित लेखक टी.वी. लेखक को दोयम दर्जे का मानता है। इस दिशा में विचार करने की आवश्यकता है कि लेखन साहित्येत्तर लोगों के हाथ में कैद न हो जाये?

छोटे पर्दे पर काम करने वालों का शोषण ही शोषण है। अतः चाहकर भी लोग इस क्षेत्र में प्रवेश की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे हैं। दूरदर्शन यहाँ के कलाकारों-लेखकों आदि से बचता रहा है यदि इन विचारों में सच्चाई है तो दूरदर्शन को इस दिशा में भी विचार करना चाहिए ताकि वह आम जनता तथा क्षेत्र के कलाकार जुड़ सकें। सामाजिक संस्थओं को भी रचनात्मक भूमिका के लिए आगे आने की आवश्यकता है। यह राजनीतिक मुद्दा नहीं सृजन का मुद्दा है। सांस्कृतिक गरिमा का मुद्दा है। रेडियो/दूरदर्शन ने यहाँ किसी भी प्रकार की मुहिम को नहीं चलाया। यह सरकारी तंत्र की धुरी हैं।

जब महानगर के बड़े पर्दे की बात की जाए तो पहला नाम '**पं. राधेश्याम कथावाचक**' का आता है। यहाँ टेलीफिल्म पर तो कार्य हुआ लेकिन फिल्म नगरी में महानगरी की खास पहचान नहीं बनी है। सन् 1966 के आसपास सोहराब मोदी की फिल्म 'झाँसी की रानी' में गीत लिखे थे। यह भारत की पहली ईस्टमैन कलर फ़िल्म थी। फिल्मी दुनिया राधेश्याम को रास नहीं आयी। इसका कारण वे थियेटर के आदमी थे। अत: पृथ्वीराज कपूर से उनका नज़दीकी सम्बन्ध था। हिन्द टॉकिज में एक फिल्म की ओपनिंग पर कपूर साहब बरेली भी आये थे। ऐसा उल्लेख कथावाचक जी ने अपनी आत्मकथा में किया है।

बरेली के '**महावीर राना**' का प्रारंभिक जीवन शिक्षा के साथ-साथ थियेटर की छोटी-छोटी हास्य भूमिकाओं से था। एक बार उन्होंने सिकलपुर रामलीला में दशानन का अभिनय किया था। शायद यहीं से उनका रुझान विलेन रोल की तरफ हुआ। अभिनेत्री बिन्दु, प्रेम चौपड़ा, प्राण आदि खलनायकों के साथ छुटपुट रोल किये थे। अमिताभ बच्चन की फ़िल्म जंजीर में इनकी छोटी भूमिका विलेन की थी। लेकिन खलनायक के रूप में कोई मंजिल नहीं मिली। मुझे ध्यान है कि जब सन् 2000 ई. में आर्मी स्कूल, बरेली की छात्रा '**प्रियंका चौपड़ा**' ने मिस वर्ल्ड का खिताब जीतकर बरेली का नाम रोशन किया। अपने जनपद लौटने पर उनका भव्य स्वागत किया गया था। चार घोड़ों की बग्गी पर उन्हें ताज पहने देखा था। 'बरेली क्लब' में दिए एक साक्षात्कार में विकलांग और अनाश्रित बच्चों की सेवा का प्रण लिया था। नगर के लिए यह सुखद अनुभव लिया। यहाँ से विदा होने के पश्चात उन्होंने शहर की ओर मुड़कर नहीं देखा। फ़िल्म जगत में कामयाबी के झंडे फहराने का श्रेय आपको है। प्रियंका की कामयाबी ने यहाँ की लड़कियों की जीवन-शैली को ही बदल दिया। 'प्रियंका चोपड़ा' आज फिल्म जगत में कामयाब व्यक्तित्व का नाम है। आपने अपने नाम से जुड़े विवादों पर ध्यान न देकर काम पर ध्यान रखा। यहीं उनकी कामयाबी का राज है। उनका परिचय इस प्रकार है :

जीवन परिचय :

प्रियंका चोपड़ा का जन्म 18 जुलाई, 1982 को हुआ था। वे एक भारतीय फिल्म अभिनेत्री, गायक और 2000 की मिस वर्ल्ड प्रतियोगिता की

विजेता हैं। उनके सफल फ़िल्मी कैरियर के माध्यम से चोपड़ा बॉलीवुड की सबसे अधिक वेतन पाने वाली अभिनेत्रियों में से एक है और भारत में सबसे लोकप्रिय हस्तियों में से एक बन गयी है। उन्होंने एक सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री का राष्ट्रीय फ़िल्म पुरस्कार और चार श्रेणियों में फिल्मफेयर पुरस्कार के सहित कई पुरस्कार प्राप्त किये है।

प्रियंका का जन्म जमशेदपुर में हुआ था। लेकिन वह बरेली को अपना असली घर समझती हैं। क्योंकि बरेली की सीढ़ी पार करके ही बॉलीवुड की कामयाब मंजिल तक पहुँची हैं। उनके माता-पिता भारतीय सेना में चिकित्सक थे। सन् 2000 में एक किशोरी के रूप में वह अमेरिका में अपनी चाची के साथ कुछ वर्ष रही। अमेरिका में वे फेमिना मिस इंडिया प्रतियोगिता की दूसरी विजेता रही और मिस इंडिया वर्ल्ड के खिताब के लिए प्रवेश किया जहाँ उन्हें मिस वर्ल्ड का ताज पहनाया गया था। इस सम्मान को प्राप्त करने वाली वह पाँचवीं भारतीय थी।

चोपड़ा एक समय में इंजीनियरिंग या मनोरोग का अध्ययन करने की आकांक्षी हैं, वह 2002 में तमिल फिल्म थमिजहन में अपने अभिनय की शुरुआत कर रही है, उसे तमाशा जीत का एक परिणाम के रूप में आया था जो भारतीय फिल्म उद्योग में शामिल होने के प्रस्ताव स्वीकार किए जाते हैं। अगले वर्ष वह उसे फिल्मफेयर बेस्ट फीमेल डेब्यू अवार्ड और अभिनेत्री का पुरस्कार फिल्मफेयर सर्वश्रेष्ठ के लिए एक नामांकन जीता जो अंदाज, हिट हीरो, उसकी पहली हिंदी फिल्म रिलीज में अभिनय किया और बॉक्स ऑफिस के साथ पीछा किया। वह बाद में एक नकारात्मक भूमिका में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए उसे फिल्मफेयर पुरस्कार जीतने, 2004 थ्रिलर एतराज में एक आकर्षकता की भूमिका के लिए विस्तृत महत्वपूर्ण मान्यता अर्जित की। 2006 तक चोपड़ा बेहद सफल फिल्मों 'क्रिश' और 'डॉन' में अभिनीत भूमिकाओं के साथ हिंदी सिनेमा की एक प्रमुख अभिनेत्री के रूप में खुद को स्थापित किया था। असफल फ़िल्मों की एक शृंखला के लिए मिश्रित समीक्षाएँ प्राप्त करने के बाद, वह 2008 नाटक फैशन में एक परेशान मॉडल, 2009 शरारत थ्रिलर में एक feisty मराठी महिला सहित, अपरंपरागत पात्रों के चरित्र को निभाने के लिए आलोचकों की प्रशंसा प्राप्त

वारियर, 2011 नव में एक सीरियल किलर – 7 खून माफ और 2012 रोमांटिक कॉमेडी बर्फी में एक autistic औरत! वह इस तरह के एक्शन थ्रिलर डॉन 2 (2011), बदला नाटक अग्निपथ (2012), बर्फी जैसी फिल्मों में अभिनय से आगे व्यावसायिक सफलता हासिल की। और सुपरहीरो विज्ञान कथा फिल्म क्रिश 3 (2013), जो सभी के सभी समय का सबसे अधिक कमाई करने वाली भारतीय फिल्मों के बीच रैंक।

फिल्मों में अभिनय के अलावा, वह स्टेज शो में भाग लेती है टीवी पर एक रियलिटी शो की मेजबानी की है और भारत के राष्ट्रीय अखबारों के लिए कॉलम लिखा है। 10 अगस्त, 2010 को बाल अधिकार के लिए एक यूनिसेफ के सद्भावना राजदूत के रूप में नियुक्त किया गया था। 2012 में, वह 'अपने शहर में' अपने पहले एकल जारी किया। उनका दूसरा एकल 'विदेशी' 2013 में शुरु हुआ और संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा जैसे देशों में।

सन् 2015 ई. बरेली के उत्साही कलाकारों ने 'द अलीगढ़' फीचर फिल्म में महत्वपूर्ण कार्य को अंजाम दिया है। इस फिल्म में भारतेन्दु सिंह, अंसल मेहता, मनोज तिवारी, नीलम वालिया तथा मटकी चौकी निवासी पेशे से फोटोग्राफर संजय मठ का अभिनय है। फिल्म अगस्त में प्रसारित होगी।

सन् 2015 में टी.वी सीरियल में एक और नाम चर्चित हुआ है– 'अमाया माथुर'। बरेली की इस अदाकारा की 'तेरे शहर में' में विशेष भूमिका है। बरेली के ही संजय सिंह ने भी बालीवुड में दस्तक दी है।

महानगर में टेलीफिल्म पर तो कार्य हुआ है लेकिन फिल्म नगरी में महानगर ने खास पहचान नहीं बनायी है। महावीर राना ने भी छुट-पुट भूमिकाएं फिल्मों में की। लेकिन फिल्मी नगरी ने इन्हें स्वीकार नहीं किया। इस परम्परा तथा निराशा को दूर किया है संजय सिंह ने। महानगर के प्रसाद सिनेमा में प्रदर्शित होने वाली फिल्म 'मैडम डॉन' में उसने मुख्य नायक की भूमिका अदा की है। मधु प्रोडक्शन के बैनर तले बनी इस फिल्म के निर्माता हैं मधु प्रोहित। यह एक फार्मूला फिल्म है। कहानी के केन्द्र में वैज्ञानिक फार्मूला की चोरी की घटना है। इस फार्मूला को प्राप्त करने के लिए टीम नायक शक्ति कपूर के आदेश पर चार युवतियां प्रयास करती हैं। मैडम डॉन भूमिका में ऊषा बाछानी ने अच्छी अदाकारी

की है। संजय सिंह के साथ सहनायक की भूमिका में विजय सोलंकी ने दर्शकों का भरपूर मनोरंजन किया है। मुख्य नायिका की भूमिका की है कल्याणी ठक्कर ने। संजय सिंह (बरेली निवासी) ने अपने कैरियर की शुरुआत डी.डी. मैट्रो पर अमिता नागिया के सीरियल 'देश-परदेश' से की। इस क्षेत्र में आने से पूर्व स्नातक शिक्षा बरेली कॉलेज से पास की। मुम्बई के आशा चन्द्रा एक्टिंग एण्ड डायरेक्शन स्कूल से एक वर्षीय डिप्लोमा कोर्स (1997 ई.) किया। सन् 1996-97 में J&dam A mR$BpES > m(GRIVERA OF INDIA) में इनका चयन 'मिस्टर इण्डिया' हुआ। यह संस्था भारतवर्ष में मिस इण्डिया की तरह 'मिस्टर-इण्डिया' का चयन करती है। इस प्रतियोगिता में इन्हें दसवां स्थान मिला था। इस चयन की सफलता के पश्चात वह फिल्मों की ओर मुड़ गये। एक के पश्चात एक फिल्म साइन की।

संजय सिंह की दूसरी फिल्म 'गीता मेरा नाम' मार्च 2000 में रिलीज हुई। इस समय लगभग दस फिल्में इनकी झोली में हैं। बतौर नायक सभी में भूमिका है। अपने बेटे की इस सफलता पर पिता मोरिस सिंह को नाज है एक भेंट में उन्होंने कहा– 'बेटे को बचपन से ड्रामा-फिल्म का शौक था। मुझे प्रसन्नता है कि वह इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर रहा है।

खास जानकारियां–

पूरा नाम – संजय सिंह

आयु – 23 वर्ष

कद – 6.3 फुट

शिक्षा – स्नातक

जनपद – बरेली

पिता – मोरिस सिंह

माता – श्रीमती डॉली सिंह

रुचि – ड्रामा- फिल्म

ट्रेनिंग-एक्टिंग कोर्स

मनपसंद रंग – गहरा नीला

मनपसंद हीरो-हीरोईन – अमिताभ बच्चन, काजोल

खान-पान – भारतीय भोजन।

फिल्म निर्देशक रजा मुराद के पिता मीरगंज, बरेली के दिलमास गाँव के रहने वाले थे।

फिल्म डायरेक्टर राज मेहरा और रति अग्निहोत्री बरेली जनपद के हैं।

इस प्रकार शहर इस दिशा में गतिवान है।

□

कला-संभावनाओं का महत्वपूर्ण केन्द्र

इस नगर ने देश को अनेक कलाकार अवश्य दिए हैं, लेकिन यहाँ कला वातावरण निर्मित नहीं हुआ है। व्यक्तिगत अहम एवं गुटबाजी के कारण कला-दीर्घा का प्रश्न अधूरा ही है। ब्रज क्षेत्र का प्रभाव होने के कारण यहाँ लोक-कलाओं का बोलबाला रहा है। कृष्णाष्टमी, गोधन, दीपावली, होली, विजय पर्व, अहोई पूजन एवं सिमरा-सिमरिया एवं टेसू आदि लोक पर्व लोक-कलाओं से ही जुड़े हुए हैं। महानगरीय संस्कृति एवं व्यवसायिकता ने इन कलाओं को इतिहास की वस्तु बना दिया है। लोक-कला चित्रों का स्थान कैलेण्डर ने ले लिया है। कल्पना एवं मौलिकता इनमें कहाँ? लोक संस्कृति की सुरक्षा के लिए किसी सांस्कृतिक संस्था या कलाकारों ने पहल क्यों नहीं की?

अहिच्छत्र रामनगर (आंवला) मूर्ति स्थापत्यकला का महान केन्द्र था। यहाँ के शिव मंदिर से प्राप्त गंगा-यमुना की मृण मूर्तियाँ 'भूतो न भविष्यति' का उदाहरण हैं। यह विश्व-धरोहर राष्ट्रीय संग्रहालय नयी दिल्ली में सुरक्षित हैं। इन मूर्तियों में गुप्तकालीन कला का प्रभाव है। भारत कला-भवन काशी में सुरक्षित यहाँ से प्राप्त पंखों वाला हिरन अपनी कल्पना के कारण अद्भुत है। यहाँ से प्राप्त मूर्तियों में कला के गहन अध्ययन की आवश्यकता है। लेकिन यहाँ के कलाकारों ने इन्हें मात्र इतिहास की वस्तु मानकर अपने क़र्तव्यों की इतिश्री समझ ली है। कलाकारों की पारखी नज़र इन पर कब पड़ेगी?

बरेली– आंवला के मकबरे एवं मस्जिदों में ईरानी-मुगल कला का प्रभाव है। किला गेट के लालित्य की चिन्ता किसे है? रुहेलखण्ड हाफ़िस रहमत रजा खाँ का मकबरा इसी उदासीनता के कारण ही खंडहर हो गया। किसे चिन्ता है यहाँ के स्थापत्य की? शेरगढ़ एवं पश्चिमी फतेहगंज के बुर्ज खंडहर होने की प्रतीक्षा में है। यहाँ के शहीद स्मारकों पर अवैध कब्जों का सिलसिला ज़ारी है।

टीले की मिट्टी का उपयोग मकान बनाने में हो रहा है। संस्कृति प्रेमी सामाजिक संस्थाओं तथा रुहेलखंड वि.वि. के इतिहास-विभाग ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया है। पुरातत्व धरोहरों के उद्धार का बीड़ा किसी ने नहीं उठाया। स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती पर यदि इस दिशा में पहल की जाती तो उत्तम होता। लेकिन ऐसा सोचा तक नहीं गया?

संस्थाओं ने केवल प्रचार-प्रसार तथा थोथी कलाप्रियता में कर्तव्यों पर विराम लगा दिया है। विद्यार्थी चित्रकार अजय रघुवंशी ने स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती पर चित्रण कार्य द्वारा जनता को कला से जोड़ने में कितने सफल-असफल रहे है, यह अलग प्रश्न है। लेकिन तूलिका ने कुछ सोचने के लिए विवश अवश्य किया है। अपने अजूबे कार्यक्रमों द्वारा सदैव मीडिया में चर्चित अवश्य रहे हैं। लेकिन यह कला की अंतिम यात्रा नहीं है। एक कला प्रदर्शनी में इनका चित्र देखा था। जिस प्रकार के प्रयोग इन्होंने किए हैं। उस प्रकार के प्रयोगधनवादी चित्रकार लगभग सत्तर साल पूर्व करके छोड़ चुके हैं। महानगर में एक अन्य चित्रकार ने भी इसी प्रकार के प्रयोग किए थे। प्रश्न यह महत्वपूर्ण है कि कला में ये करना क्या चाहते हैं। किस रूप में, सिर्फ रूप के नाम पर नारी देह का नाम कला नहीं है। चित्रण में जिसका संयोजन तक अपना न हो अनुकृति कृति का स्थान कदापि नहीं ले सकती। लेकिन ऐसा यहाँ के कलाकार भरपूर कर रहे हैं। विश्वविद्यालय और स्वतंत्र कलाकारों में एक लम्बी खायी है? युवा कलाकारों में अपार संभावनाएं है। ऊर्जा को संयत्र रखने की आवश्यकता है।

महानगर में डॉ. पुष्पलता शर्मा का सम्मान कला का सम्मान है। साधना का सम्मान है। राज्य ललित कला अकादमी एवं रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय इसके लिए बधाई के पात्र हैं। यह नगर के लिए गौरव की बात है। यहाँ महत्व पुरस्कार राशि का नहीं साधना के सम्मान की है। महानगर ने दिवंगत चित्रकारों को लगभग भुला ही दिया है। स्वर्गीय सी. बरतारिया, अविनाश बहादुर वर्मा, तथा हरीश राय जैसे कलाकारों की कला प्रदर्शनियाँ की जाती। ऐसा नहीं हुआ।

देश-विदेश की घटनाओं से यह महानगर अछूता नहीं है। बदली हुई परिस्थितियों में राष्ट्रीय नेताओं का चरित्र बदला है। नेताओं के प्रति आस्था-अनास्था में बदली है। अतः आज शायद ही किसी संभ्रांत नागरिक के घर में

हमारे नेताओं के चित्र मिलें। महानगर में महापुरुषों की मूर्तियों का हाल जगजाहिर है। महानगर में जवाहर पार्क है, लेकिन नेहरु गायब हैं। लाजपत राय मार्केट है लेकिन लाजपत राय गायब हैं। शास्त्री-मार्केट है लेकिन लालबहादुर शास्त्री गायब हैं। चौपला चौराहे के किनारे इंदिरा प्रियदर्शनी की मूर्ति कब लगेगी? एक समय था जब महानगर ने इन मूर्तियों को नित्य मालाएँ पहनाई जाती थी। मूर्तियों में उच्च शिल्प का अभाव महानगर के कुरूप होने का संदेश भी देता है। काश! शिल्पकार इस ओर विचार करते। इन परिस्थितियों में नगर में उ.प्र. एजुकेशनल सोसाइटी एवं वरिष्ठ समाजसेवियों ने कभी सोचा ही नहीं। फिर भी महापुरुषों की याद में आयोजित चित्रकला प्रतियोगिता एवं सराहनीय प्रयास अवश्य है। स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती अवसर पर युवा कलाकारों को राष्ट्रीय नेताओं के चित्र बांटकर उन्हें इस दिशा में प्रेरित किया जाता टोलियाँ बनाकर घर-घर यह संदेश दिया जाता सोने में सुहागा होता। लेकिन आयोजकों ने इस दिशा में नहीं सोचा।

स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती पर बरेली कॉलेज की प्रदर्शनी कला का महायज्ञ होते हुए भी अपने उद्देश्य में असफल रही। इस कला यज्ञ ने समाज को किस प्रकार का संदेश दिया है? डॉ. शशिराठी, डॉ. मंजू सिंह तथा गीता अग्रवाल के चित्र कलात्मक अवश्य थे लेकिन राष्ट्रीय सरोकारों से उनका कोई संबंध नहीं। डॉ. पारुल गुप्ता ने उद्देश्य को बाँधने की कोशिश की है लेकिन होली आते-आते सब कुछ बिखर गया है। डॉ. किशोर कुमार ने नारी-जीवन में झांकने की कोशिश की है। रंग संयोजन ने प्रभावित किया। तलत महमूद की ग्रामीण बाला से मैं मिल चुका हूँ। इनकी कृतियों में अमृता शेरगिल का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। अनेक चित्रों में मौलिकता की कमी आड़े आ जाती है। ए. रहमान मूलत: फोटोग्राफर है। अत: उनके चित्र यथार्थता के निकट हैं। रंग-संयोजन में परिपक्वता है। अधिकांश कृतियाँ बीते युग की स्मृतियाँ है। डॉ. सुनील रस्तोगी ने लोकतंत्र की हत्या में समीक्षावादी प्रवृत्ति को लिया है। युवा कलाकारों में परिपक्व कलाकारों की अपेक्षा वैचारिक बौनापन नज़र नहीं आया। मुझे आशा है कि उनकी तूलिका मंजिल की तलाश में निराश होने वाली नहीं। आवश्यकता है वरिष्ठ कलाकारों के प्यार की। बरेली-कॉलेज के पूर्व कलाशिक्षक हरीश

राय की अजन्ता आर्ट्स शीर्षक से पुस्तक का प्रकाशन सन् 1952 में हुआ था। वह मेरे संग्रह में है। इसमें रेखांकन है।

कुल मिलाकर महानगर में कला वातावरण एक मंजिल की तलाश में है। आवश्यकता है सच्ची निष्ठा एवं स्वस्थ कला सोच की। इसके लिए कला गुटबाजी से ऊपर उठकर सोचना होगा। नगर के वरिष्ठ कलाकार डॉ. सरन बिहारी सक्सेना ने 28 मई, 1989 में मुझे दिए गये साक्षात्कार में बरेली को 'कला की संभावनाओं से जुड़ा महत्वपूर्ण केन्द्र' माना है। उनकी दृष्टि में बरेली कलाशिक्षकों, कलाकारों एवं आलोचकों की भूमि रही है। प्रो. सी. बरतरिया, प्रो. सी. बरुआ, पी. टण्डन, हरीश राय, डॉ. अविनाश बहादुर वर्मा, देवेन्द्र बहादुर सेठ आदि बरेली में ही जन्में हैं। रमेश सक्सेना को लोग भूल चुके हैं। रचनाधर्मिता ही कलाकार की पहचान है अत: निरन्तर सीखने की प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए।

□

प्रकृति और पर्यावरण : गुरु-शिल्प की चिन्ता

पर्यावरण असंतुलन से विश्व के पर्यावरणविद चिंतित हैं। पर्यावरण असंतुलन से निपटने के लिए आवश्यक है अपने आसपास के वातावरण के प्रति जागरुकता। इस विषय की जानकारी हम पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों, प्राचीन ग्रंथों से भी प्राप्त कर सकते हैं। प्रकृति-संतुलन के साथ प्रकृति साहित्य के संरक्षण की भी आवश्यकता है। बरेली के टीबरीनाथ मंदिर से मिला 'पदार्थ विद्या सार नामाग्रंथ:' इसका दिलचस्प उदाहरण है।

यह ग्रंथ मंदिर जीर्णोद्धार के समय मिला था। ग्रंथ के अंतिम पृष्ठ संख्या 68 पर संवत 1936 (सन् 1879) अंकित है। इस हस्तलिखित ग्रंथ में ईश्वरीय सृष्टि की सभी वस्तुएँ आँखों के सामने हैं, इन्हीं वस्तुओं का दर्शन विवेचन करना उद्देश्य है। यह ग्रंथ गुरु-शिष्य संवाद शैली में है। इस प्रकार की ग्रंथ शैली तक्षशिला तथा नालंदा विश्वविद्यालयों में प्रचलित थी। यह अनूठी शैली का ग्रंथ बोलचाल की भाषा में है। संस्कृतवाणी में इधर डेढ़ शताब्दी में नहीं लिखा गया।

ग्रंथ में परमार्थ प्रश्नोत्तरी जैसे गूढ़ विषय भी हैं। पृष्ठ 19 पर शिष्य-गुरु से प्रश्नकर्ता है। यह वर्णन चतुर्थ कथोपकथन में प्राणी, प्राणी जलादि योनि से सम्बद्ध हैं। जंतु विषय का वर्णन पृष्ठ 33 से प्रारंभ है।

वर्णन में बंदर, चींटी, हाथी, गैंडा, सुअर तथा रेंगने वाले जंतुओं के खान-पान, दैनिक क्रिया, गति आदि का वर्णन है। पक्षी विषय वर्णन (पृष्ठ 38) में नभचर-जलचर, दिनचर-रजनीचर, तैसव्य, अहिंसक, गर्भ योनि, अण्डयोनि आदि का वर्णन है।

इसमें जंतुओं के प्रकार की उपयोगिता, अणु-परमाणु इत्यादि विषयों का उल्लेख है। अज्ञात ग्रंथाकार का मत है कि हमारा सृष्टिकर्ता परमेश्वर परमदयालु ईश्वर ने निःस्वार्थ रूप से पृथ्वी की सृष्टि हमारे रक्षार्थ तथा सुखों का

उपयोग करने के लिए नाना विधानों का निर्माण किया है। ताकि युगों-युगों तक संसार की आवश्यकताओं की पूर्ति होने के साथ-साथ प्राकृतिक-संतुलन भी बना रहे। इस ग्रंथ का चतुर्थदशक कथोपकथन देश-विदेश में उत्पन्न वस्तुओं पर आधारित हैं। पृष्ठ 67 पर इंग्लैंड, ग्रीनलैंड, डेनमार्क, अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका तथा रूस में उत्पन्न प्राकृतिक सम्पदा का प्रश्न शिष्य करता है। उसका वर्णन गुरु द्वारा किया गया है।

ग्रंथ के अन्त में शिष्य-गुरु के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है। हे गुरु! आपने मेरे प्रति अनुग्रह प्रकट किया है। मैं कृतार्थ हूँ। मैं इस समय जानना चाहता हूँ कि मानव हितार्थ यह संसार महाकोषागार की तरह है। अत: ईश्वरीय प्रशंसा करना हमारे लिए उचित है। इस संसार में करोड़ों मनुष्य हैं। उन सभी के हितार्थ इतनी प्रकार की वस्तुएँ उपलब्ध हैं। अत: हमारे मन में शंका नहीं होती। इन सब पर जब मैं विचार करता हूँ तो आश्चर्य होता है कि ईश्वर (प्रकृति) ने सभी प्राणियों के जीवन के लिए इतनी सुंदर वस्तुओं की सृष्टि की है।

स्कूल-कॉलेजों में जब तक गुरु-शिष्य इस भाव से नहीं जुड़ेंगे, न मनुष्य का कल्याण होगा और प्रकृति का संरक्षण। प्रकृति संतुलन को लेकर अभी तक केवल नौटंकी जारी है। सच्चे अर्थों में हम प्रकृति से जुड़े ही नहीं है। अत: पर्यावरण संतुलन के विषय में ऐसे ग्रंथों को संरक्षित-सुरक्षित रखने की आवश्यकता है। ग्रंथ में तीन रंगों का प्रयोग हुआ है– लेख मोती जैसा। किसी भी स्थान पर रचनाकार का उल्लेख नहीं है। लगभग 125 वर्ष पूर्व लिखा गया यह ग्रंथ हमारे मनीषी भविष्य के प्रति पहले से ही चिंतित थे। ग्रंथ मौलिक है तथा प्राकृतिक संतुलन का कोषागार भी है। लेकिन महानगर में ऐसी चिंता न सामाजिक स्तर पर है और सरकारी स्तर पर। रामगंगा मेरे देखते-देखते मर गयी या यूँ कहें कि मैला ढोने का नाला बनकर रह गयी। धिक्कार है नगर की चेतना को।

□

राजस्थानी कला शैली में चित्रित रामचरित मानस की पाण्डुलिपि

रामचरित मानस हिंदू समाज के जनमन का श्रद्धास्पद ग्रंथ है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस की कई हस्त लिखित लिपियाँ उपलब्ध हैं। चर्चित पाण्डुलिपि कवि बेनी की है। यह तुलसी के समकालीन हैं। सरस्वती पुस्तकालय रामनगर तथा नागरी प्रचारिणी सभा (वाराणसी) में भी मानस की पाण्डुलिपियाँ हैं। एक खण्डित पाण्डुलिपि मेरे संग्रह में भी है। लेकिन पांचालपुरी निवासी श्री ईश्वर चन्द्र शर्मा के संग्रह में रामचरित मानस की चित्रित पोथी का ऐतिहासिक महत्व है। यह ग्रंथ कई अर्थों में विचित्र है। यह पाण्डुलिपि तुलसीदास कृत रामचरित मानस की अनुकृति है। हाशिये पर दोनों ओर लाल रेखाएँ खिची हैं। शब्द, दोहा, चौपाई लाल स्याही से लिखे हैं शेष काली स्याही से लिखी है। बालकाण्ड की पृष्ठ संख्या 1 से 127, अयोध्या काण्ड पृष्ठ 1 से 179, अरण्यकाण्ड 1 से 45 पृष्ठ, सुन्दर काण्ड 1 से 38, लंका काण्ड 1 से 121 तक, उत्तर काण्ड 1 से 36 तथा किष्किन्धा काण्ड के 1 से 36 पृष्ठ सुरक्षित हैं। इसमें 37-66 विकृत पृष्ठ हैं। प्रत्येक काण्ड का पृष्ठ क्रम अलग-अलग है। प्रत्येक पृष्ठ 18.3×29.3 सेमी. व अनुमानित काल 16वीं-17वीं शती ई. है। इस पोथी के विषय में अवकाश प्राप्त डिप्टी कलक्टर श्री ईश्वर चन्द्र शर्मा ने बताया कि यह पारिवारिक धरोहर है।

वंश-परम्परा में यह रामायण सबसे बड़े पुत्र को प्राप्त होती रही है। ऐतिहासिक वस्तुओं का संग्रह करना मेरा शौक रहा है। प्राचीन सिक्के मृण, मूर्तियाँ, टेराकोटा आदि रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय को मैंने दान में दिए हैं। रामचरित मानस की इस हस्तलिखित प्रति के प्रथम पृष्ठ पर अंकित हैं 'श्री गणेशाय नमः श्रीमत राम कृष्णाय सर्वेश्वराय नमः। अथश्री

राम चरित्र गुसांई तुलसीदास लिख्यते।' इसके आगे से मूल रामायण प्रारंभ होती है। मूल रामायण में पूर्व उक्त वाक्य का उल्लेख नहीं है। रामायण में राजस्थानी लिपि का प्रभाव है। प्रथम पृष्ठ में गणेशाय, ॐ कृउनाय में मुण्डी भाषा का प्रभाव है। श को 3 (तीन), ष को 6 (छह) के रूप में लिखा गया है। सर्वेश्वराय में 'श्रव' मिलाकर अंकित है। यह प्रभाव मूल रामचरित मानस में नहीं है। अतः यह पाण्डुलिपि अन्य पाण्डुलिपियों से भिन्न है। श्री शर्मा के संग्रह में इस पोथी का ऐतिहासिक तथा धार्मिक महत्व ही नहीं है। उसका कलात्मक महत्व भी है। पोथी में किशनगढ़ शैली के पाँच दुर्लभ चित्र हैं। प्रत्येक चित्र 17वीं शदी का है। पुरातत्व विभाग में चित्रों का अलग-अलग रजिस्ट्रेशन है। ग्रंथ में चित्रावली क्रमांक 2423 उप्र. बरेली 19 के अनुसार पहला चित्र निम्बार शरण देव का लघुचित्र 32 वर्ष की अवस्था का है। चित्र का आकार 23.8 × 15.9 सेमी है। हस्त निर्मित कागज पर बने इस चित्र में चित्रकार का उल्लेख नहीं है। काल 17वीं शती ई.। दूसरे चित्र में अशोक वाटिका में सीता जी खड़ी हैं, वाटर कलर 21.8×10.5 सेमी. 17वीं सदी। अब तक उपलब्ध अशोक वाटिका के अन्य चित्रों में केवल बैठी सीता का चित्रांकन है। लेकिन यह चित्र अन्य चित्रों से अलग है। चित्रावली तीन के तीन खण्ड हैं। काक भुसुंडि जी कथा सुनाते हुए, शिव-पार्वती को कथा सुनाते हुए तथा याज्ञवल्क्य मुनि भारद्वाज को कथा सुनाते हुए। चित्र की बारीकी देखने योग्य है। चित्रकार का उल्लेख नहीं है। 14.9×17.9 सेमी काल 17वीं सदी कागज पर निर्मित। पंचम चित्र में हनुमान जी हाथ जोड़कर ध्यान मुद्रा में खड़े हैं। 15.4×36 सेमी आकार का यह लघु चित्र कागज पर निर्मित है तथा उसमें जल रंगों का प्रयोग किया गया।

इन चित्रों में जहाँ किशनगढ़ शैली का प्रभाव है वहीं रामचरित मानस की पोथी में राजस्थानी छाप है। इसकी अनुकृति का स्थान राजस्थान है। प्राचीन पोथियों के लिपिकार आज भी राजस्थान में हैं। प्राचीन समय में छापाखाना न होने के कारण लिपिकार प्राचीन ग्रंथों की अनुकृतियाँ तैयार करते थे। यह ग्रंथ उसी परम्परा का एक उदाहरण है। चित्र किशनगढ़ शैली के हैं। इन चित्रों में सोने तथा सच्चे मोतियों का खुलकर प्रयोग हुआ है। इससे चित्र त्रिआयामी लगते हैं। मोतियों का प्रयोग आभूषणों में हुआ है। वस्त्र पारदर्शी हैं। शरीर में रंग सपाट

हैं। यथास्थान छाया प्रकाश की भी झलक है। अलीगढ़ के चित्रकार गोपाल मधुकर ने इन पर शोध करने की योजना बनाई थी लेकिन वे इसे अंतिम रुप नहीं दे सके। रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय से डॉ. जेबा हसन के निर्देशन में जिस शोध छात्रा ने किशनगढ़ शैली पर शोध किया है, उनकी दृष्टि भी इन चित्रों की ओर नहीं गयी? अपने ही महानगर में किशनगढ़ की अमूल्य धरोहर उपेक्षित रह गयी?

रामचरित मानस की इस अद्भुत पाण्डुलिपि को दिखाते समय श्री ईश्वर चन्द्र शर्मा की प्रसन्नता भावों को न रोक पाई। उन्होंने कहा मेरी योजना थी बरेली में एक ऐसा संग्रहालय हो जहाँ रुहेलखण्ड की कला-संस्कृति और इतिहास-साहित्य की मनोहर झाँकी हो। यहाँ सब कुछ बिखरा-बिखरा है। उसे एक मंच चाहिए। जिसे देखकर लोग गौरवान्वित हों लेकिन इस दिशा में निष्ठावान लोगों की कमी है। पांचाल इतिहास परिषद ने इस दिशा में कार्य किया था। लेकिन... काश! रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय इस दिशा में आगे आता! मैंने अपनी जिन्दगी का एक लम्बा अनुभव ऐतिहासिक वस्तुओं के संग्रह में लगाया। यह श्रमसाध्य कार्य है। अवस्था के अनुरूप अब हिम्मत नहीं होती। मैंने अपना संग्रह लोगों को बाँट दिया ताकि वह नष्ट न हो। कई दुर्लभ सिक्के मेरे संग्रह में आज भी हैं। पहली शताब्दी से आज तक के तीन हजार सिक्के मेरे संग्रह में थे। आधुनिक-विदेशी सिक्के तो मैंने अपने परिवार में दे दिये हैं ताकि बच्चे इस शौक को जिंदा रखें तथा उनके मूल्य को समझें। वर्तमान में केवल प्राचीन सिक्के ही हैं। इनकी संख्या लगभग एक हजार है। रामायण हमारी वंशज सम्पदा है।

□

महाकाव्य : जीवन का प्रयोग

महानगर कभी भी साहित्य का गढ़ नहीं रहा। यहाँ खण्डकाव्य तो लिखे गये लेकिन महाकाव्य लेख की स्वस्थ परम्परा नहीं रही। पं. राधेश्याम कथावाचक ने रामायण को लोक प्रचलित खड़ी बोली में लिखा। गायन की विशिष्ट शैली के कारण राधेश्याम रामायण को प्रसिद्धी मिली। हिन्दी महाकाव्यों में इस रामायण की गणना क्यों नहीं हुई? महाकाव्य का एक लेखक होता है। जबकि 'राधेश्याम रामायण' को विभिन्न लेखकों ने लिखा है। सन् 1982 में प्रकाशित संस्करण में बालकाण्ड से लंका-काण्ड की कथा पं. राधेश्याम कथावाचक ने लिखी है। रामायण के पुराने संस्करणों में अहिरावण-वध के रचयिता पं. रामनारायण पाठक हैं। नये संस्करण में पं. राधेश्याम कथावाचक नाम अंकित है। लव-कुश कथा खण्ड के तीनों कथासूत्र पं. मदनमोहन शर्मा द्वारा रचित हैं। अत: इस स्थिति में यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि रामायण को महाकाव्य माना जाये या नहीं? अपनी लोकप्रिय शैली के कारण रामायण का महत्व कम नहीं हुआ है। केवल तर्ज़ के आधार पर कथा खण्डों में एकसूत्रता खोजना भी न्यायसंगत नहीं है। एक तर्क यह भी हो सकता है कि कथावाचक जी ने गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण के आधार पर लंकाकाण्ड तक की कथा को लिखा। इसके क्षेपक अंशों की कथा तर्ज़ के आधार पर अन्य लेखकों ने लिखी। इसके इन कथा खण्डों को जोड़कर सम्पूर्ण रामायण का रूप दिया। कथावाचक जी के विषय में यह कथन प्रचलित हुआ– बाल्मीकि तुलसी भये, तुलसी राधेश्याम। शोधार्थी के सामने यह समस्या आती है कि सम्पूर्ण रामायण में किस अंश को राधेश्याम कृत मानें। अत: इस दिशा में नीर-क्षीर की होकर ही मंजिल तक पहुँचा जा सकता है।

महाकाव्य सम्पूर्ण चरित्र का प्रतिनिधित्व भी करता है। पं. राधेश्याम कथावाचक के इस ग्रंथ में बीसवीं सदी के प्रारम्भ की परिस्थितियां एवं देशकाल

वर्णित है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हो चुका था। देशी राजा निस्तेज एवं शक्तिहीन हो गये थे। ब्रिटिश साम्राज्य का दानव आर्थिक-सामाजिक-राजनैतिक कुचक्र रच रहा था। अतः इस युग में एक ऐसे जननायक की आवश्यकता थी जो राम का रोल अदा कर सके। कथावाचक जी का यह लोकनायक संस्कृत या अवधी भाषा में नहीं बोलता, लोक प्रचलित खड़ी बोली में बोलता है। रामायण के प्रारंभिक संस्करणों में उर्दू संस्करण भी प्रकाशित होता था। इसका कारण था कि रूहेलखण्ड की मूल भाषा उर्दू थी। समय-समय पर रामायण के भिन्न-भिन्न संस्करणों में जो परिवर्तन हुए हैं का उल्लेख मैंने अपने आलेख-कथावाचक की पहचान खतरे में (नवभारत टाइम्स) में किया है। रामायण के महाकाव्यात्मकत्व को लेकर फिर लिखूँगा।

स्व. निरंकार देव सेवक के काव्य गुरु पं. नाथूलाल अग्निहोत्री नम्र कृत महाकाव्य 'वनस्थली' (प्रथम संस्करण सन् 1951) के विषय में साप्ताहिक हिन्दुस्तान ने लिखा– ''वनस्थली का अन्तरंग इतना उज्ज्वल है कि इसके आगे बहिरंग दोष निष्प्रय हो जाते हैं।'' इस ग्रंथ में शत्रुघन की पत्नी श्रुतकीर्ति का चरित्र-चित्रण उनकी नवीन परिकल्पना है। मात्रिक छंद तथा तुकान्तगद्य चित्रण उनकी नवीन परिकल्पना है। मात्रिक छंद तथा तुकान्तगद्य गीत युक्त महाकाव्य का आधार पौराणिक है। इसमें इक्कीस सर्ग हैं। नम्र जी ने लिखा– रस, अलंकार, ऋतु-वर्णन, प्रकृति-वर्णन में मेरा प्रयास नहीं है। प्रसंगवश स्वाभाविक है, संयुत्ताद्य दी धर्म नियम का पालन नहीं किया। पं. अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत प्रिय प्रवास से पूर्व रचित इस महाकाव्य को नोटिस में क्यों नहीं लिया गया? इस ग्रंथ में शोध की पर्याप्त संभावनाएँ हैं। इस दृष्टि से किसी ने विचार नहीं किया? ग्रंथ में सीता वनवास के साथ-साथ गाँधी सिद्धान्तों की भी चर्चा है। यथा–

''उच्छृंखलता कभी राष्ट्र में थी न उठाती ग्रीव, न्याय करुण शासन ने समझा, सदा जीव को जीव।''

मंगलाचरण में भारत गौरवगाथा का वर्णन– ''जिसके सम्मुख कीर्ति कौमुदी थी त्रिभुवन की तुच्छ, इसी देश उपवन की मुकुलित कृति-कलिका का गुच्छ।

वनस्थली का राम सीता से अपने अपराध क्षमा की याचना भी करता

है। सीता-वनवास की तर्ज पर पुनः राम वनवास की कल्पना कवि की नवीन उद्भावना है। राम के रूप में गाँधी के महाप्राण कथा सूत्र में वर्णित है। अतः हो जय हिन्द तेरी। यह नीति बलिदान की करुण कथा है। खड़ी बोली का यह अनुपम ग्रंथ है। आवश्यकता है सही मूल्यांकन की। पं. नाथूलाल अग्निहोत्री नम्र कृत वनस्थली के मूल में है हिन्दी को उर्दू प्रभाव से मुक्त करना। संस्कृत निष्ठ खड़ी बोली का यह प्रयोग अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध कृत 'प्रिय प्रवास' से कम महत्वपूर्ण नहीं है। अतः नम्र जी ने हिन्दी की महान सेवा की है। महाकाव्य पर विस्तार से चर्चा फिर कभी।

महानगर में महाकाव्य लिखने की परम्परा थमी नहीं है। यह कर्म साधना की माँग करता है। लेकिन आज का कवि दो-चार कविताएं रचकर कवि रूप में स्थापित हो जाता है। भले ही कविता की समझ उसमें हो या न हो। महानगर में दादुर कवियों की कमी नहीं है। आज की कविता व्यक्ति केन्द्रित हो गयी है। निरन्तर चिन्तन के आयाम बदलने के कारण ही यह स्थिति उत्पन्न हुई है। आज अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम गद्य है, पद्य नहीं। इसका आशय यह कदापि नहीं कि कविता का युग समाप्त हो गया है। जब तक मानव है उसे कविता की आवश्यकता बनी रहेगी।

डॉ. महाश्वेता कृत 'विवेक विजय' को भाषा संस्थान, लखनऊ द्वारा सहायता प्राप्त है। सन् 1997 में प्रकाशित इस ग्रंथ के प्राक्कथन में विवेक के अनुसार काम करना ही विवेक विजय है। आर्य साहित्य में नव इन्द्रियों की पुरी अयोध्या है। कवयित्री ने इस पुरी के राजा विवेक की कल्पना की है। विवेक है इन्द्रियों का स्वामी (गोपेन्द्र) है। यथा स्थान पुर्नजन्म का भी उल्लेख है। त्याग श्रेष्ठ है। विवेक बुद्धि के अभाव में सत्या का निर्णय मानव नहीं कर पाता है। कलापक्ष की दृष्टि से इस ग्रंथ में छायावादी शैली एवं छन्द विधान है। ग्रंथ में वैदिक मान्यताओं के अतिरिक्त सांख्य एवं शैव दर्शन का भी उपयोग है। कहीं-कहीं यह भ्रम होने लगता है कि कामायनी महाकाव्य पढ़ा जा रहा है। संस्कृत निष्ठ खड़ी बोली मुक्तक छन्द का यह महाकाव्य आत्मा-परमात्मा-माया की पर्तों को कितना खोल सका है। यह व्यक्ति के विवेक पर निर्भर है। लेकिन कवयित्री वैदिक दर्शन की बात करती है। आर्य साहित्य में विवेक एवं प्रतिभा

की कमी नहीं है। आर्य साहित्य विवेक की श्रेष्ठता तथा उसकी स्थापना है। इसी आधार पर भारतीय प्रतिभा पलायन को रोका जा सकता है। यह बड़ी समस्या है। जब तक हमारे मन में स्वयं के विवेक की श्रेष्ठता का भाव नहीं आयेगा विवेक विजय सम्भव नहीं है। अतः कवयित्री कथन– 'मेघा-वैभव के मोती के शिथिल नहीं ताने बाने। यह कार्य स्वाध्याय से ही संभव है। अतः विद्या का संसर्ग मिला जब हर पल है शोभायन जीवन।

नरेन्द्र कुमार 'सत्य' (जन्म 26 अगस्त, 1914, पुण्य तिथि 28 अक्टूबर, 1997) ने अपने जीवनकाल में सृजन के आयाम स्थापित किए हैं। 'भारतीय संस्कृति दर्शन' महाकाव्य नाट्यरूप, 15 अंकों में जुलाई 1978 में रचित अप्रकाशित है। इसी क्रम में 'वसुपेण' एवं सूत पुत्र महाभारत पर केन्द्रित नाटक अक्टूबर, 1986 में रचित अप्रकाशित है। 'श्री कृष्ण गरिमा' चार खण्डों में वर्णित काव्य में श्री कृष्ण के जन्म से उद्धव प्रसंग की कथा है। प्रत्येक खण्ड में बाइस अध्याय हैं। 'अवर्णित रामावतार' में उन्होंने सिद्ध किया है कि श्रीराम को वनवास माता कैकेयी ने नहीं दिया था। अप्रकाशित सितम्बर, 92 में रचित। पद्यानुवाद सत्यदर्शन कन्हैया श्रीधर उद्धव पद, सत्य रत्नाकर (विविधा एवं आरती संग्रह) उर्दू में तीन ग्रंथ हैं– सहर की बात, दीगर एवं ग़ज़ल नज़्म कर्मबोध, मेरी माँ (पद्यानुवाद) तथा नाटक– वृहन्नला, शिखण्डी तथा कलिराज कलभ्रम। इन रचनाओं में नरेन्द्र कुमार सत्य का बहुमुखी व्यक्तित्व मुखरित हुआ है।

यह महाकाव्य धर्मग्रंथ होते हुए भी साहित्य की कसौटी पर खरा उतरता है। रामचरित मानस की प्रस्तुति नहीं उसका संयोजन मात्र है। पूरे ग्रंथ में अवधि भाषा की गरिमा नहीं गिरी है। हर पर्व का आत्म सम्पुट है ताकि गायन का प्रारुप बना रहे। ग्रंथकार का पूरा प्रयास रहा है कि रामायण का पारायण ठीक चौबीस घंटे में पूर्ण हो सके। संपूर्ण ग्रंथ में चालीस प्रतिशत दोहे हैं– श्रोतागण सम्पूर्ण पुण्य भक्तधन पाठ कृतज्ञ मैं सवन्ह कर सकल निवाहे ठाठ।

ग्रंथकार ने अन्त में लिखा–

"भक्तजन भाव भीर-भंजन।
कीर्ति कल करणा अन्यन की राम कीर्ति कला पावन की।।"

महाकाव्यों से एक बात स्पष्ट हो जाती है। पुरातन से नूतन की सीख कितनी उचित है? इस पर विचार ही नहीं किया गया है। यहाँ के कवियों का ये प्रयास एक मिसाल है। अच्छा हो वे कुछ और सार्थक कर दिखाएं। ये महाकाव्य कोई नया साहित्यिक मानदण्ड स्थापित करने में कालजयी कृति का सम्मानजनक स्थान क्यों नहीं बना सके। उनका मूल्यांकन आज तक क्यों नहीं हुआ। इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। महाकाव्य रचनाकारों को मेरा शत्-शत् नमन।

□

श्मशान को समर्पित कवि सम्मेलन

मनुष्य प्रकृति की सुन्दरतम कृति है। उसने जीवन में सौन्दर्य की खोज की। जीवन जितना सुन्दर है, मृत्यु उससे भी अधिक सुन्दर। अत: कबीर ने जीवन को पानी का बुलबुला मानकर ही परम सत्य को खोजने की सलाह दी है। समस्त धर्मग्रंथों का निष्कर्ष भी यही है। गीता में जीवन के सुन्दर गीतों की अभिव्यक्ति है। कालीघाट (कलकत्ता), मणिकर्णिका (काशी) तथा उज्जैन के शिप्रा नदी के श्मशान पर जलती चिताओं को देखकर श्मशान वैराग्य उत्पन्न होता है। एक अज्ञात शायर ने लिखा है– 'हे श्मशान!, तू है अभी तक वीरान जबकि तुझे आबाद करते है देकर अपनी जान।' लेनिक बरेली के श्मशान को कवियों ने काव्यांजलि द्वारा सुन्दर बनाया है। यहाँ आने वाला इन्हें पढ़कर आनन्दानुभूति का अनुभव करता है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद द्वारा रोपित चंदन वृक्ष भी यहाँ संरक्षित है।

कवि किशन लाल साकिब को लोग भूल चुके हैं। नाटा कद, गौर वर्ण, गाँधी टोपी तथा कुर्ता-पायजामा। यह थी उनकी सज-धज। सन् 1972 ई. में मेरी उनसे मुलाकात एक कवि गोष्ठी में हुई थी। वे देवनागरी उर्दू में कविता लिखते थे। उनके पास हस्तलिखित कई मोटी सजिल्द कापियाँ थीं। उन्होंने कई नाटकों का मंचन एवं निर्देशन भी किया। साहित्य कला अकादमी से वे लम्बे समय तक जुड़े रहे। अचानक वे एक दिन रुक गये। श्मशान भूमि के शिलालेख पर उनकी ये कविता–

"पंच तत्त्व का यह शरीर कटोरा उस रोज बिखर जाता है।
जीवन का यह खास पखेरू उस रोज बिखर जाता है।।
बनूँ नहीं मैं बूँद धरा की, तजकर धार नदी की भूल खुद की।
मुझको वर दो चिंता करूँ सभी की।।"

यहाँ एक अज्ञात कवि ने सुनाया–

"श्मशान भूमि वैराग्य की निष्फल जान।
मृत्यु सदृश्य कोई नहीं प्रभु का मंगलयान॥"

कवि रामचरण ख्यालगो इलाहाबाद बैंक में दफ्तरी हैं। यहाँ उनकी कविता का स्पर्श पाकर शिलालेख बोलने लगते हैं। एक में मानव को अभिमान न करने की सलाह–

"सत्य की ध्वनि आ रही श्मशान से,
ऐ बेटों तुम सुनों तनिक ध्यान से।
मौत के कांधे है कल आना यहाँ,
बात क्यों कर रहा अभिमान से॥"

यहाँ पति-पत्नी का प्रेम, पिता-पुत्र की श्रद्धा, माता-पिता का गौरव, बेटा-बेटी का सौहार्द, पुत्र-वधु का अटूट बंधन, संगे-संबंधियों तथा मित्रों की पवित्र स्मृतियाँ हैं। ऐसी ही एक स्मृति इस काव्यांजलि में–

"पति पत्नी के विमल प्रेम का टूट न जाए तार
इसी आस से लिख रही है, प्रभु-प्रभु रही पुकार।"

स्वर्ग-आश्रम में प्रवेश करते ही स्नानागार के निकट बौद्ध भिक्षु एस. 'धम्मपाल' ने श्मशान वन्दना में कहा–

"श्मशान उद्यान स्थान महा नतमस्तक हो झुके ही रहेंगे।
दे प्राण सज-सज विमान यहाँ शनैः शनैः रुकते ही रहेंगे॥"

यह महानगर कवयित्री शान्ति अग्रवाल को भूल चुका है। सन् 1973 में आपसे पहली मुलाकात हुई थी। आज कल आप दिल्ली प्रवास पर हैं। 'दुल्हन आई गोल-मटोल' को दिल्ली अकादमी ने चयनित किया है। श्मशान भूमि में उनकी यह काव्य पंक्तियाँ–

"सत्य स्वरूप भगवान रूप है झूठा है संसार।
शान्ति सत्य में अविचल आस्था जीवन का आधार॥
भव सागर तरने की केवल दो साधन अनमोल
ईश्वर में आस्था की नैय्या कर्मों की पतवार॥"

अज्ञात कवि ने श्मशान को आगमन की धर्मशाला कहा है। राजकुमारी उपाध्याय ने लिखा है– कालवती के प्रहर से कौन बच सकता है? पुनः किसी अज्ञात कवि की आवाज गूँजी–

"आज उसी मन को मनवाने वाले,
मन से अपने भुला रहे हैं।
आज उसी तन को तन-तन वाले,
क्रूर अनल में जला रहे हैं।।

कवि अनिल जौहरी का अनुभव है कि मृत्यु साधन ने तन को धूमिल कर दिया है। कवि रामगोपाल तिक्खा की दृष्टि में दुनिया का नाता झूठा है। ब्रह्मज्ञानी इससे बच सकते हैं। घनश्याम सिंह की काव्यांजलि में कवि कीट्स का प्रभाव है–

"जन नाटक ईश्वर निर्देशक जीवन नाम कथानक का है।
प्राणी कलाकार है इसका निज भूमिका अदा करता है।।"

बनवारी लाल माहेश्वरी व गुनेश्वरी देवी का अनुभव एक-सा है। कोई पुत्र में दुःखी तथा कोई–

"कौन किशन पर रोक सका है,
मृत्यु ताण्डव जग में।
अवशोषित रह जाते हैं वस,
स्मृति चिह्न दृग में।।"

किशन रामपुरी का विचार है–

"अंधेरों को पता है किसलिए श्मशान भूमि का।
चिता शायद किसी बेवस के अरमानों की
यह मंजर हैं खुद शोले भी जिससे थर्राते हैं
यहाँ अपने किए पर मौत अपने हाथ मलती है।"

यहाँ श्मशान पल-पल जलता मिलेगा, न जाने यहाँ कितनों की आशाएँ धुआँ हुई हैं। स्व. कवि निरंकार देव सेवक ने 11 फरवरी 1991 में लिखा– "मैं क्यों लिखता हूँ? यह प्रश्न ऐसा ही है कि कोई मुझसे पूछे मैं क्यों जिंदा हूँ।

...शायद अगला कदम जब चिता पर पड़ने वाला है। आज मैं खुद कह लेता हूँ–

"आज तो अर्श तक आवाज देते हैं तुझे
हो कभी ऐसा कि तू हमको पुकारे, हम नहीं।"

कवियों, साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों, नाट्यकर्मी तथा समाज सेवियों से भरे पूरे इस महानगर में उनके निधन पर कोई हलचल नहीं हुई। सेवक परिवार में कैद होकर रह गये। यहाँ चिताओं में हरीश कुमार की यादें भी हैं। वे दशरथ प्रवृत्ति के समाजसेवी थे। उनका एक पत्र– "शर्मा जी अमर उजाला में प्रकाशित लेख– मथुरा का प्रेम संदेश और बरेली के कवि नाथूलाल अग्निहोत्री 'नम्र' पढ़ा। लेख शोधपरक एवं उत्तम है। इस उपद्रवी युग में लेख बहुत उपयोगी होगा। स्व. उमा पाण्डेय की रचनाएँ बाद में भेजूँगा। बनारस प्रवास के पश्चात कभी आपके दर्शन नहीं हुए। सेवक जी के काव्य गुरु ने अनेक कृतियाँ साहित्य जगत को दी हैं। उनका मूल्यांकन होना शेष है। स्वर्गीय रामजीशरण सक्सेना के काव्य-संग्रह 'निर्झरिणी' का छंद सुधार आपने ही किया। श्मशान भूमि के शिलालेख में एक छंद अंकित है। प्रातः स्मरण में इसका प्रसारण आल इण्डिया रेडियो से होता था–

"क्षण भंगुर जीवन की कलिका,
प्रातः को जाने खिली न खिली।
मलयाचल की शुचि शीतल मंद,
सुगंध समीर चली न चली।
कलि काल कुठार लिए फिरता,
तन नम्र है चोट झिली-न-झिली।।"

एक शिलालेख में डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी ने अपनी अभिव्यक्ति दी है।

कुछ आवे कुछ चल दिये कुछ बैठे तैयार।
इसीलिए इस लोक का नाम पड़ा संसार।।
सद्भावों की गंध से महकादे उद्यान।
साथ चलेगा धर्म बस भूल नहीं नादान।।

इस कवि सम्मेलन में ज्ञात-अज्ञात कवियों को मेरा शत्-शत् नमन जिन्हें श्मशानी कविता का अनुभव है। □

ज़री-बेंत उद्योग में चमक लौटी है

ज़री उद्योग की फैशन जगत में माँग-ही-माँग है। रूपहले पर्दे पर नायिकाओं के झीने कपड़ों पर की गयी ज़री कार्यों को देखकर दाँतों तले अंगुलियाँ अवश्य दबाई होगी। यूरोप, इजराइल तथा अरब में ज़री कार्यों की अच्छी मांग है। देशी-विदेशी फैशन-जगत से जुड़ी हस्तियों तथा धर्म स्थलों की पवित्र स्मृतियाँ यहाँ केजरी धांगों में गुथे हुए हैं, कुर्ते-साड़ी, ब्लाउज-बुर्के, झीनी नाईटी। अंगरियाँ दुपट्टा, ड्राइंग रूम के झीने पर्दे, सजावटी कार्यों में यहाँ कारीगर जान फूँकते हैं। पूर्व समय में रईस नवाब एवं जमींदार इस काम की कद्र करते थे। सोने-चाँदी के तारों में सद्ये मोती-पोत से कपड़ों पर आकर उभारे जाते थे। समय ने करवट ली और बदली रुचियाँ नये उत्पादनों में इसका स्थान बनावटी धागो पोत ने ले लिया है। आज अधिकांश काम बनावटी है। इसमें चटख है और आकर्षण भी। ग्राहक मांग करता है, अत: यह उद्योग जिन्दा है और जिन्दा है, यहाँ की कारीगरी। बस नहीं बदला है काम करने का तरीका और परम्परागत डिजाइन। अत: यहाँ के काम में रजवाड़ों की सजधज का प्रभाव है।

बरेली-ज़री उद्योग मुगल समय से आज तक अपनी गरिमा बनाये हुए है। भारत विभाजन के पश्चात यहाँ के कारीगर पाकिस्तान नहीं गये, परम्परागत कला यहाँ सुरक्षित है। इजराइल में यहाँ के ज़री वस्त्रों की धार्मिक दृष्टि से विशेष माने जाते हैं। जेरुशलम के गिरजाघरों में प्रभु ईसा मसीह के वस्त्र बरेली के सिद्धहस्त कलाकार ही तैयार करते हैं। इस प्रकार का काम करने वाले विश्व में कहीं नहीं है। बरेली के अतिरिक्त धार्मिक वस्त्र बड़ी श्रद्धा और लगन से कुछ गिने-चुने कारीगर ही तैयार करते है। पवित्र धर्मग्रन्थ कुरान शरीफ़ को वस्त्र मे लपेट कर रखा जाता है। इस ग्रंथ का ऊपरी वस्त्र भी यहाँ के कारीगर तैयार करते हैं। इसकी मुस्लिम देशों में भी माँग है। इस उद्योग में फैशन जगत की

चुनौतियों को भी स्वीकार किया है। अत: यहाँ का नाम और काम धूमिल नहीं हुआ है।

ज़री उद्योग का यहाँ कोई संगठित बाजार नहीं है। बाजार पर पूँजीपतियों का एकाधिकार है। ये लोग सीधे या दलालों के माध्यम से काम कराते है। कारीगर को कपड़ा, कच्चा माल डिजाइन के हिसाब से दे दिया जाता है, माल तैयार होने पर। सिर्फ मजदूर गरीब अशिक्षित होने के कारण असंगठित है, सदियों से शोषण जारी है। किसी भी सामाजिक संगठन या सरकार की ओर से इनकी दशा सुधारने में कोई प्रयास नहीं हुए? मजदूर नमी सीलन युक्त कमरों में काम करने को मजबूर हैं। संगीत की तेज ध्वनि तेज प्रकाश में पोत धागे हाथ में पकड़े पैनी निगाहें काम करने में व्यक्त हैं। बहुत कम कारीगर हैं जो दिन में काम करते हैं। दिन में काम की तलाश चहल-पहल भी उनकी साधना में बाधक है। अत: साधक का काम रात्रि में 14 की उम्र के या मोटा काम के कारीगर दिन में काम करते मिलेंगे। नगर का पुराना शहर ज़री उद्योग का गढ़ है जखीरा, किला शाहबाद, कहरवान तथा कटघर में भी ज़री कारीगर हैं। कुछ कारीगर माल शहर से उठाते है और काम करते है। मजदूर दिहाड़ी के हिसाब से काम करते है। ज़री उद्योग में बाल श्रमिकों को लगाया जाता है। महिलाएँ भी इस कार्य को अंजाम देती हैं, लेकिन वे काम की तलाश में बाजार में नहीं घूमती है, इनकी संख्या कम ही है।

बरेली ज़री उद्योग भी अन्य उद्योगों की तरह बाल श्रमिक शोषण से मुक्त नहीं है। प्रारम्भ में काम सीखने के बहाने से इन्हें लगाया जाता है। चाय, नाश्ता, खाना तथा पुराने कारीगरों (उस्तादों) की सेवा से इसकी शुरूआत होती है। देखते-देखते काम की समझ पकड़ विकसित होने लगती है; यहीं जन्म लेता है बच्चे में एक कारीगर। प्रारम्भ में मजदूर कुछ भी नहीं या नाम मात्र को। काम बड़ों के बराबर काम के घंटे निश्चित नहीं हैं। यह परम्परा है कि बचपन का हुनर बुढ़ापे तक काम आता है। ज़री-उद्योग बाल श्रमिकों के शोषण से मुक्त नहीं है।

इस उद्योग से जुड़े एक कारीगर ने अपना नाम न बताते हुए, बाबूजी तेज रोशनी से काम करने के कारण निगाह कमजोर हो गयी है, संगीत की तेज ध्वनि में नींद कम आती है, लेकिन इससे कानों को कम सुनाई देने लगा है। कुछ मालिक मजदूरी दबाकर रखते हैं, ताकि हम काम छोड़कर और कहीं न चले

जाएँ। अब इस काम में बंगला देशी एवं बिहारी मजदूरों की भी घुसपैठ होने लगी है। इसका स्थानीय मज़दूरों पर असर पड़ा है। इस उद्योग से जुड़े दलालों-पूंजीपतियों का अपना मकड़जाल है। यहाँ का बना माल सीधे दिल्ली, मुम्बई एवं कलकत्ता जाता है। यहाँ से यह अरब, यूरोप, दुबई एवं इजराइल देशों को निर्यात किया जाता है। व्यापार कहीं भी हो लेकिन इस उद्योग की जड़ें बरेली में है। आज अपने ही शहर में यह ज़री उद्योग बेगाना होकर रह गया।

कैसे बनता है– ज़री कपड़ा सबसे पहले कपड़े और डिजाइन का चयन किया जाता है। डिज़ाइन को कपड़े पर उतारने के पश्चात कपड़े को लकड़ी की फ्रेम (अड्डा) पर फँसाया जाता है ताकि उसमें झोल न रहे, काम करने का स्थान, पोत धागा सुई तथा सितारों से डिज़ाइन को रूप दिया जाता है। यह उद्योग आज प्रतिस्पर्धा के दौर से गुजर रहा है। मुख्य स्पर्धा हैदराबाद से है। लखनऊ का चिकन उद्योग से। रामपुर का पैचवर्क भी इस प्रतिस्पर्धा में है। एक लम्बे समय तक यह उद्योग गुमनामी के अंधेरे में रहा है। सन् 1975 के पश्चात् से पुन: इस काम में चमक लौटी है। उत्तम क्वालिटी, नये डिज़ाइन तथा प्रयुक्त कच्चा माल उत्तम क्वालिटी का न होने के कारण फीका पड़ जाता है। कुछ फर्मों ने गुणवत्ता की ओर ध्यान दिया है। अत: काम की माँग बढ़ी है। यहाँ के कारीगरों को प्रशिक्षण देने का कोई संस्थान नहीं है। अत: डिज़ाइन में परम्परागत गुण मिलेगा। इसे इस उद्योग की मजबूरी माना जायेगा या गुणवत्ता? बरेली का दरी एवं खेस व्यवसाय की साख गिरी है। लेकिन आज बरेली का फर्नीचर, सुरमा, पतंग, मांझा तथा बेंत उद्योग की ख्याति दूर-दूर तक है। यहाँ का मांझा की विशेष मांग। यहाँ के अधिकांश उद्योगों की स्थिति-परिस्थितियाँ एक सी हैं। अन्तर केवल निर्माण का है। चीन के बने मैटल माँझे के कारण यहाँ का माँझा उद्योग प्रभावित अवश्य हुआ है लेकिन समझदार लोग बरेली-माँझे की ही माँग करते हैं। इन उद्योगों की चर्चा मैं फिर करूँगा। बरेली का बेंत फर्नीचर अपनी गुणवत्ता की धाक जमा रहा है। लेकिन इसके संघर्ष की अपनी कहानी है।

बरेली की पहचान माने जाने वाले बेंत के फर्नीचर आधुनिकता की आँधी में फँसकर धीरे-धीरे अतीत की चीज बनते जा रहे हैं। ज़ो लोग आज इस धन्धे में लगे हैं उन्हें दिन-रात मेहनत करने के बावजूद अपने परिवार के लिये दो

वक्त की रोटी जुटा पाना मुश्किल है। बरेली में जो भी बेंत का सामान बिकता है या बाहर भेजा जाता है उसका नब्बे प्रतिशत काम 'पदारथपुर गाँव' में ही होता हैं। इस गांव में अधिकांश मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग हैं। बेंत के फर्नीचर बनाना अब इनका पुस्तैनी धन्धा हो गया हैं। कई बचपन से ही बेंत के काम में लगे हैं। पहले लोग साइकिल में लगने वाली बेंत की टोकरी बनाया करते थे और बाद में बेंत के ही मोढ़े सोफा सेट आदि। ऐसा काम सिखाने से क्या फायदा कि जिससे कारीगर अपने बच्चों का पेट भी न भर सके। मैं तो यही चाहूँगा कि वे यह काम न करें बाकी ऊपर वाले की मर्जी। 40 वर्षीय हसन खाँ 15-20 साल से सोफा बनाने का काम कर रहे है। इसके पहले यह भी टोकरियाँ बनाया करते थे। इनके भी पाँच बच्चे हैं। एक लड़का राजस्थान में रहता है। उसका वहीं पर बेंत के सामान का शो-रूम है। यह यहाँ से माल बनाकर वहाँ भेजते है। वह वहाँ बेचता हैं। बाकी बच्चे क्या करेंगे यह जमील उनकी किस्मत व ऊपर वाले की मर्जी पर छोड़ देते हैं। मो. शुफी जैसे अनेक लोग बेंत का काम कर रहे हैं। वे कहते हैं इस धन्धे से गुजारा कर पाना अब मुश्किल हो रहा हैं इसलिए यह काम छोड़कर अब लोग राजगीरी करने लगे हैं। एक सोफा बनाने के उन्हें 200 से 300 रुपये मिलते हैं और एक सोफा चार-पांच दिन में तैयार होता है। इतने पैसे में भारी भरकम परिवार का पेट पालना बड़ा मुश्किल काम हैं। फिर प्लास्टिक की कुर्सियाँ बाजार में छायी पड़ी है। उनके आगे बेंत की क्या-क्या पूंछ। बेंत आसाम में पैदा होता है लेकिन फर्नीचर यहाँ बनता हैं। इसका प्रमुख कारण स्थानीय लोग यहाँ पैदा होने वाले देशी बेंत को मानते हैं। यह बेंत गोरखपुर, देहरादून, लखीमपुर व नेपाल में होता है। चीरने के बाद इस बेंत के बने बन्द मंहगे बिकते हैं। बेंत को कोई भी रूप देने में इन बन्दों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आसाम से बेंत का जो बण्डल आता है उसके एक बण्डल में 20 से 50 बेंत तक होता हैं। बेंत की अनेक किस्में है। जैसे– रायडान, जाती, गल्ला, हरना, अण्डमान आदि। इसमें अण्डमान सबसे अच्छा बेंत माना जाता है। यह बेंत अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह से आता है। इसका यह यहाँ कम ही आता है। दूसरा सबसे अच्छा बेंत हैं रायडान का। पुलिस, के डण्डे भी इसी बेंत के होते है इसका बना सोफासेट बहुत ज्यादा मजबूत होता है। बाजार में उपलब्ध सोफे जाती बेंत के होते है। पदारथपुर में जाती बेंत का एक सोफा व दीवान बाजार की अपेक्षा सस्ता मिल जाता है। मजदूरी पर

काम करने के साथ ही लोग फर्नीचर की बिक्री भी करते है। इसी गाँव में देखा लोग सोफा बनाने का काम कर रहे है। धूप में हथौड़ी चला रहे है। पहले एक सरकारी योजना आयी थी जिसमें नये लोगों को काम सिखाया जाना था। बाहर के गाँवों से लड़के बुलाये गये उन्हें प्रशिक्षण दिया गया लेकिन ऐसे प्रशिक्षणों से होता क्या है। हम लोग 5 साल में भी पूरा काम नहीं सीख पाते है और वे कुछ महनों में क्या सीख पाये होंगे। यह तो वे ही जानते होंगे। इस योजना में भी लाखों रुपया खर्च हुआ होगा लेकिन हमारे गाँव को क्या मिला कुछ नहीं। सरकार ने यहाँ बेंत का गोदाम मंजूर किया है। इस गोदाम में आसाम से खरीद कर बेंत आयेगा और यहाँ हम लोगों से उनका फर्नीचर बनवाकर बाहर भेजा जायेगा और हम लोग बेंत खरीद कर खुद भी फर्नीचर बेच सकेंगे। लेकिन यह योजना कागजों में ही गुम होकर रह गयी। कभी न कभी इस पुश्तैनी काम के अच्छे दिन अवश्य आयेंगे।

□

शहर के आस्था तीर्थ

'उल्टे बाँस बरेली को' कहावत आपने सुनी होगी। इस कहावत की व्याख्या मैं 'बरेली की पहचान बनीं बस्तियाँ' आलेख में कर चुका हूँ। इसका आशय यह कदापि न लिया जाये कि यहाँ सब कुछ उलटा-पुलटा है। बरेली की गरिमा का उल्लेख महाभारत में 'अहिच्छत्र' के रूप में मिलता है। उत्तर में पहाड़ की तराई से लगता, दक्षिण में गंगा की गोद तक पसरा क्षेत्र पांचाल के नाम से विख्यात था। इसके ऊपर हस्तिनापुर क्षेत्र की सीमाएँ थी। राजा द्रुपद ने दक्षिणी पांचाल का हिस्सा गुरु द्रोणाचार्य को गुरु-दक्षिाणा में प्रदान किया था। अत: उत्तरी पांचाल की राजधानी 'अहिच्छत्र' तथा दक्षिणी पांचाल की राजधानी 'कंपिला' (कामिपल्य) का अस्तित्व सामने आया। वर्तमान में कंपिला एटा जिला की तहसील है। कंपिला नाम की तम्बाकू इसी क्षेत्र की मुख्य उपज है। उत्तरी पांचाल की सीमाएँ बिजनौर, सहारनपुर, मुरादाबाद, रामपुर, पीलीभीत, शाहजहाँपुर, बदायुँ तथा बरेली को स्पर्श करती थीं। उत्तर-पथ तथा दक्षिणी-पथ का उल्लेख वैदिक इतिहास में है। उत्तरी पांचाल उत्तरी-पथ का महत्वपूर्ण जनपद था। गंगा तथा रामगंगा नदियों के मध्य अहिच्छत्र प्रमुख नगर सभ्यता थी। द्रुपद की पुत्री द्रोपदीं का प्रचलित नाम पांचाली भी है। इस प्रकार 'अहिच्छत्र' को समझने के लिए हमें इलाहाबाद संग्रहालय, भारत कला भवन वाराण्सी, भारतीय पुरातत्व संग्रहालय, लखनऊ संग्रहालय तथा रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय का पांचाल संग्रहालय में संग्रहित साक्ष्यों को पढ़ना आवश्यक है। यहाँ की जीवन शैली सिंधु-सभ्यता के समकक्ष है। अहिच्छत्र में एक प्राचीन शिव मंदिर के खण्डहरों से गंगा-यमुना की मृण-मूर्तियाँ मिली हैं। जो मृण-मूर्तिकला का आदर्श उदाहरण हैं। प्रस्तर खण्ड को जिसे लोग भीमगदा कहते हैं, वस्तुत: वह शिवलिंग है। यहाँ से प्राप्त मृण भाण्ड, मनकों-मोती, पंखों वाला हिरण, बड़ी ईंटें, मृण-मुद्राएँ आदि सभी कुछ मिट्टी का ही है। गंगा-यमुना मूर्तियों में गुप्त कला का

प्रभाव है। अहिच्छत्र के खण्डहरों में अश्वत्थामा आज भी घूमता मिल जाएगा। 'लिलौर' (लिल्लौर) झील का संबंध भी महाभारत काल से है। 'यक्ष-प्रश्न' की घटना इस स्थान से जुड़ी है। महाभारत कालीन एक अन्य शिव मंदिर फरीदुर के आगे पचोमी गाँव में मुख्य मार्ग के किनारे है। इसे वर्तमान में 'पचोमी नाथ' के नाम से जाना जाता है। वनवास के समय पाण्डव यहाँ रुके थे तथा शिवलिंग की स्थापना की थी। यह वही शिवलिंग है। यह शोध का विषय है। अहिच्छत्र का गहरा संबंध जैन धर्म से भी है। यह पाँचवें जैन-तीर्थांकर 'पार्श्वनाथ' की पवित्र जन्मस्थली भी है। यहाँ भगवान बुद्ध के आगमन तथा बौद्ध मठ स्थापित करने का भी उल्लेख है। चीनी यात्री 'ह्वेनसांग' तथा 'फाहियान' ने अहिच्छत्र की अपनी यात्रा कड़ी में वर्णन किया है। इतिहास की परतों में जाने का उद्देश्य केवल इतिहास वर्णन या धर्मस्थल को मान्यता प्रदान करना मात्र कदापि नहीं है। इनकी परतों को झकझोरना एवं अतीत को झकझोरना है। यह शहर के प्राचीन धार्मिक स्थल हैं।

वर्तमान में अहिच्छत्र (रामनगर) आंवला तहसील के अन्तर्गत बरेली जनपद का मुख्य ऐतिहासिक स्थल है। बरेली सम्बन्ध राजा 'जगत सिंह' के दो पुत्रों 'वासुदेव' एवं 'बरलदेव' से है। इन्हीं के नाम पर इस वासु वरल/वासु बरेली और कालान्तर में बाँस बरेली और आज बरेली नाम से प्रसिद्ध है। दरी, खेस, फर्नीचर, बेंत-फर्नीचर, सुरमा, पतंग, माँझा, ज़रदोजी (ज़री कार्य) आदि प्रमुख उद्योग हैं। किसी नगर की संस्कृति के निर्माण में वहाँ की कला-साहित्य, स्थापत्य, संगीत, भाषा आदि का विशेष महत्व है। लेकिन आज धार्मिक कर्मकाण्ड को संस्कृति के रूप में परिभाषित करने का चलन है। संस्कृति की समग्रता का नाम 'रूहेलखण्ड' केवल नाम से जाना जाता है। यह सब यहाँ व्याप्त सन्नाटे के कारण हो रहा है। गंगा-यमुना संस्कृति एवं सूफियाना गुणों का हाईजैक होने के कारण आपसी सौहार्द में कमी आयी है। यहाँ के आस्था तीर्थों की आपसी भाईचारे में महत्वपूर्ण भूमिका है। रूहेलखण्ड की समग्रता के लिए यहाँ को कोई जागृति/आन्दोलन नहीं हुआ?

आपसी भाईचारे एवं सौहार्द के निर्माण की मिसाल है– 'गद्दी स्थल तुलसी'। यहाँ का राम-दरबार एवं शिवालय सहित मठ का निर्माण महंत 'तुलसीदास' ने सन् 1560 में किया था। यह मठ के पहले महंत हैं। जो गोस्वामी

तुलसीदास के समकालीन हैं। लोगों को भ्रम है कि यहाँ गोस्वामी तुलसीदास आये तथा मठ का नाम गद्दी स्थल तुलसीदास पड़ा। यहाँ एक ताम्र-पत्र दीवार में लगा हुआ था। उसमें इस क्षेत्र को वनों से घिरा तथा लखनऊ के नवाब आशफुद्दौला की मनोकामना पूर्ण होने का उल्लेख है। उन्होंने शिवालय के शिखर को बनवाया था। उसमें त्रिशूल के साथ चाँद-तारे को स्पष्ट देखा जा सकता है। ऐतिहासिक ताम्रपत्र को सुरक्षित रखते हुए यहाँ शिलालेख लगा दिया गया है जो ताम्रपत्र की अनुकृति है। वर्तमान में मठ के महंत 'कमल नयन दास' हैं। यहाँ एक समृद्ध पुस्तकालय भी था। यहाँ का गंगा मंदिर ईदगाह के पास रामगंगा नदी के किनारे था। बाढ़ विनाश के बाद बनाया गया है।

नगर के चर्चित व्यक्तित्व फ़जर्लुरहमान उर्फ़ चुन्ना मियाँ को लोग भूलते जा रहे हैं। ऐसे समय में अलीगढ़ निवासी 'योगेन्द्र शर्मा' का उनके व्यक्तित्व पर केन्द्रित उपन्यास 'रुहेलखण्ड का गाँधी' शीर्षक से नमन् प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। उपन्यास हिन्दु-मुस्लिम एकता को समर्पित है। लेखक ने धर्मवाद-जातिवाद की जड़ों में बैठकर निष्पक्ष जाँच की है। चुन्ना के जीवन में अहम भूमिका निभाने वाले गुजराती चच्चा तथा नसीबन बुआ है, तो शमशुल भाई धर्म के नाम पर सब कुछ करने को तैयार हैं। गुजराती चच्चा को कंधा देने तथा चौधरी रामपाल सिंह की जमानत आदि से पूरा शहर चकित है। चुन्ना का यह कहना– "मुसलमानों की भलाई पाकिस्तान जाने में नहीं यहीं रहने में है।" चुन्ना मियाँ का जीवन धर्म-कर्म से ऊपर है। स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में आमजन की चेतना एवं देश-प्रेम का चित्रण, बरेली की आजादी-लड़ाई में योगदान का भी उल्लेख है। यथास्थान कुरान शरीफ़ की शिक्षाप्रद रोचक कहानियों एवं उक्तियों को भी समाहित किया है। उपन्यास के महत्वपूर्ण पात्र 'प्रो. कृपानंदन' का चुन्ना मियाँ के संदर्भ में यह कथन– "दादा आप इस्लाम के गुनाहगार हो सकते हो, लेकिन इन्सानियत पर तो आपका कर्ज़ है।" अतः चुन्ना मियाँ का व्यक्तित्व इन्सानियत की मिसाल के रूप में उन्हीं का कथन– "मुसलमान मिलते हैं, हिन्दु मिलते हैं, अच्छे इन्सान नहीं मिलते।' वे गाँधी की प्रतिमूर्ति थे। अतः लेखक ने उन्हें रुहेलखण्ड का गाँधी कहा है। मुसलमान परिवार में जन्मा चुन्ना सभी धर्मों के प्रति आस्था रखता है। बरेली-कॉलेज का कॉमर्स ब्लॉक, इस्लामियाँ इण्टर कॉलेज, धोपेश्वर नाथ मंदिर तालाब जीर्णोद्धार तथा ट्यूबवेल,

मिशन-अस्पताल की पक्की सड़क, कोहाड़ा पीर गुरुद्वारे के निर्माण में योगदान के साथ-साथ लक्ष्मीनारायण मन्दिर हेतु जमीन, कारसेवा तथा हरि मंदिर की मूर्ति में आर्थिक मदद, बच्चों की शिक्षा के गुण उन्हें गाँधी की श्रेणी में रखते हैं। नगर में इस प्रकार के चरित्र वाले नायकों को भुलाने का उपक्रम शुभ संकेत नहीं है। सेठ चुन्ना मियाँ नगर के लिए आस्था के तीर्थ से कम नहीं हैं।

बरेली सिद्धों-नाथों का शहर भी है। बरेली 'ग्वाल पा सिद्ध' सिद्ध-समाधि स्थल है। बरेली की स्थापना से पूर्व यहाँ बनाये गये शिव मंदिर हैं– टीबरीनाथ, मढ़ीनाथ, धोपेश्वर नाथ, अलखनाथ, वनखण्डी नाथ, तपेश्वरनाथ। इन्हीं मन्दिरों के ऐतिहासिक, पौराणिक एवं लोक प्रचलित मान्यताओं के अनुसार बरेली को 'नाथ नगरी' कहते हैं। इस शब्द के पीछे छिपी मानसिकता को आसानी से पढ़ा जा सकता है।

अंग्रेजों के आगमन के साथ ही ईसाई-धर्म ने नगर में दस्तक दी। 'मिशन-अस्पताल' उत्तर भारत का समृद्ध मिशनरी चिकित्सालय के रूप में उभरा। बरेली उत्तरी भारत मिशनरी प्रचार का केन्द्र बना। चौकी चौराहे पर बना चर्च मिशनरी स्कूल ब्रिटिश कला का उत्तम नमूना हैं। विशप कॉनरॉट स्कूल चर्च, कैण्ट का लाल चर्च, आदि धर्म स्थल हैं। यहाँ के चर्चों में यूरोपीय-शैली की झलक है। बरेली-सब्जी मण्डी का चर्च आज गायब है। तारघर तालाब के सामने चर्च परिसर में प्राचार्य बक की कब्र है। बरेली-कॉलेज में सन् 1857 की क्रान्ति योद्धाओं ने उन्हें फाँसी पर लटका दिया था। इस चर्च में शस्त्र सैनिक चर्च में प्रार्थना कर सकते थे। विषय की गम्भीरता को ध्यान में रखकर केवल परिचायत्मक रूप में वर्णन हैं। अंग्रेजी समय से बरेली ने नये युग में प्रवेश किया। भवन निर्माण, भाषा, उद्योग, सड़क निर्माण तथा विचारधारा में परिवर्तन किया।

भारत के दो महत्वपूर्ण इस्लामिक शिक्षा के केन्द्र हैं– 'देवबंद' (सहानपुर) तथा 'बरेलवी'। सुन्नी मुसलमानों के महत्वपूर्ण केन्द्र को **'बरेली शरीफ़'** के रूप में मान्यता प्राप्त है। इस महत्वपूर्ण केन्द्र की मुख्य मस्जिद बिहारीपुर ढाल मार्ग पर है। यहाँ के शिक्षा केन्द्र में देश-विदेश के विद्यार्थी शिक्षा हेतु आते हैं। यहाँ के पुस्तकालय में अरबी, फारसी, उर्दू तथा धार्मिक पुस्तकों का महत्वपूर्ण संग्रह है। अपने एक मित्र के साथ मैं यह संग्रहालय देख चुका हूँ। शिया-मुस्लिमों की महत्वपूर्ण मस्जिद किला में है। दोनों मस्जिदों का शिल्प रुहेला सरदारों के

समय का है। बरेली की नौ महला मस्जिद का धार्मिक तथा स्वतंत्रता आन्दोलन से संबंध है। मस्जिद परिसर में 'गाजी युद्ध' में मारे गये सैनिकों की कब्रें हैं। आज का गर्वमेण्ट कॉलेज ही पुराना बरेली-कॉलेज है। सन् 1857 से पूर्व यहाँ रुहेला नवाबों के नौ महल थे जिन्हें तोपों से उड़ा दिया गया और बाद में बरेली-कॉलेज की बुनियाद रखी गयी। यह क्षेत्र आज भी नौ महला के नाम से जाना जाता है। कटरा-चाँद में 16वीं सदी की बनी अकबरकालीन मस्जिद सबसे पुरानी है।

आला हज़रत जी अपनी विद्वता के लिए देश-विदेश में जाने जाते हैं। आपका जन्म 14 जून 1856 को बरेली में हुआ था। आप 13 वर्ष की उम्र में धार्मिक शिक्षा पूर्ण करके दस्तारे फ़जीलत से नवाजे गये। आपने विभिन्न विषयों की पुस्तकें लिखी हैं। 28 अक्टूबर 1921 ई. को आपने दुनिया को अलविदा कियां।

आजादी के पश्चात बंगाल और पंजाब से शरणार्थियों की सेवा करने का सौभाग्य नगर को प्राप्त है। आज सब कुछ बदल चुका है। नगर के विकास में इन लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका है। अपने परिश्रम-कर्मठता से आज सब कुछ इनके पास है। सिख एवं मोना (हिन्दू सिख) दोनों की आस्था के केन्द्र चर्चित हैं। हरि मन्दिर, बाँकेबिहारी मंदिर, मॉडल टाऊन गुरुद्वारा आदि आस्था के तीर्थ इसका उदाहरण हैं। गली चूड़ियों वाले गुरुद्वारों के म्यूजियम में मेरे सैनिक मित्र 'गुरु-सेवक' के गुरुओं के बनाये अनेक चित्र संग्रहित हैं। ए.एस.सी. स्कूल में वे बतौर पेंटर सेवारत थे। मेरी उनके साथ एक कला प्रदर्शनी मॉडल टाऊन में आयोजित हुई। उसका उद्‌घाटन ब्रिगेडियर सियाल नेकिया था।

नगर का नियोजन और विस्तार होने के साथ ही नये-नये आस्था के केन्द्रों का विस्तार जारी है। अनपढ़ और रुढ़िवादी समाज के लिए सड़कों के किनारे बने धर्मस्थल और उनकी आड़ में व्यवसायिक गतिविधियों से उत्पन्न अतिक्रमण ही आस्था है। इन अतिक्रमणों के सामने प्रशासन भी नतमस्तक है। अत: नगर की सड़कों को चौड़ा करने एवं विकास में ऐसी आस्था बाधक है। लोगों ने आस्था की अपनी परिभाषाएं गढ़कर उसे धार्मिक अंधविश्वास से जोड़ दिया है। एक प्रबुद्ध नागरिक को आस्था के इस जंजाल से निकलकर यात्रा करना है। महानगर में ऐसे भी आस्था के तीर्थ हैं जिसे संगीत की दुनिया में जाना जाता है। नाम है– 'खान-काहे-नियाज़िया'। यह चिश्तिया सिलसिले की महत्त्वपूर्ण शाखा है। इसके संस्थापक हज़रत शाह नियाज अहमद थे। जो लगभग

272 वर्ष पूर्व बुख़ारा (उजबेकिस्तान) से यहाँ आये। आपने सूफी विचारधारा का प्रचार-प्रसार किया। नियाज़ साहब भाषाविद एवं कवि थे। मकराना के कीमती पत्थरों की कारीगरी, शिल्प एवं सोने की कलम से बने बेलबूटे दरगाह के शिल्प की शोभा हैं। वर्तमान में शिब्बू मियाँ इसकी सेवा में हैं। संगीत-प्रेमियों के लिए यहाँ के सालाना संगीत कार्यक्रम की प्रतीक्षा रहती है। यह स्थान बिहारीपुर खत्रियान में स्थित है।

आर्य समाज बिहारीपुर तथा यहाँ का वैदिक प्रकाशन संस्कृत ग्रन्थों के लिए पूरे देश में जाना जाता है। स्वामी दयानंद सरस्वती का बरेली पधारने पर टाऊन हॉल मैदान में आयोजन हुआ था। पं. बिहारी लाल शास्त्री जैसे विद्वान संस्थान से जुड़े रहे। आज यहाँ विद्वानों की परम्परा लुप्त हो रही है। लम्बे समय तक श्रीराम आचार्य वैदिक प्रकाशन संस्थान से जुड़े रहे। उनके कई ग्रंथों का यहाँ से प्रकाशन हुआ। धर्मक्षेत्र से जुड़े अनेक मंदिर-शिवालय चर्चित है। यहाँ का पशुपतिनाथ मंदिर रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय मार्ग पर है। बालाजी दरबार बदायूँ रोड़ का प्रसिद्ध हनुमान मंदिर है। नेकपुर तथा नरियावल की शीतला माता मंदिर जमींदारी युग के हैं। नगर के मध्य स्थित काली माँ मंदिर कालीबाड़ी में है। इसकी भव्यता हेतु नये शिखर का निर्माण कार्य जारी है। साहूकारा का नवदुर्गा मंदिर, रामायण मंदिर तथा सिविल लाइन्स का हनुमान मन्दिर आजादी के बाद के हैं। दाऊ जी का मंदिर लम्बे समय तक संगीत साधकों की स्थली रहा है। वर्तमान में अवधेश गोस्वामी इस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। मलूकपुर का राघवाचार्य द्वारा स्थापित 'आचार्य पीठ' को लोग भूल चुके हैं। यहाँ से आचार्य संस्कृत समाचार पत्र लम्बे समय से निकलता रहा। राघवाचार्य की भव्य पालकी पूरे शहर में निकलती थी। वे खड़ाऊँ और कानों में कनफट कुण्डल पहनते थे। वे विद्ववत परम्परा का लम्बे समय तक बरेली का प्रतिनिधित्व करते रहे। उनका विशेष सम्मान था।

शहर से जुड़े आस्था-तीर्थ और भी हैं लेकिन लेखक की अपनी सीमाएँ हैं। अत: धर्मालू जनता से क्षमा याचना है। लेख का उद्देश्य जनपद के गौरव को रेखांकित करना है; किसी धर्म विशेष का प्रचार या उसे आहत करना नहीं। अपनी बात फिर कभी विस्तार से कहने का प्रयास करूँगा।

हरिशंकर शर्मा

जन्म : 20.7.1953 ई.

स्थान : बरेली (उ.प्र.)

प्रकाशन :

- आजाद हिन्दुस्तान के गुलाम (कहानी संग्रह)
- कबीर की बेदाग़ चादर (लेख संग्रह)
- पं. राधेश्याम कथावाचक : सफ़र एक सदी का
- यायावरी के रंग (लेख संग्रह)
- हिन्दी व्याकरण
- कला का लोकतंत्र
- कविता के बहाने (आलोचना)
- जीवन विमर्श (समीक्षा)

पुरस्कार :

साहित्य श्री (2012), अखिल भारतीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद (उ.प्र.)

सेवक स्मृति सम्मान (2013), साहित्यकार संघ, वाराणसी

साहित्य सेवा रत्न (2014), राजस्थान साहित्यकार परिषद, नाथद्वारा

साहित्य सम्मान (2015), विश्व हिन्दी दिवस आयोजन समिति, मुरादाबाद (उ.प्र.)

शब्द निष्ठा सम्मान (2015), सरवाड़, अजमेर (राज.)

सम्प्रति :

केन्द्रीय विद्यालय में भाषा-शिक्षक पद से सेवानिवृत

पता :

प्लाट नं. 213, 10/बी स्कीम, गोपालपुरा बाईपास, जयपुर (राज.) 302018

मो. : 9461046594

ई-मेल :harishankarsharma53rediffmail.com

ISBN 81-904209-9-2

नारवाल प्रकाशन

मेन मार्केट, रतन लाल रूंगटा के पास
पिलानी - 333031 (राजस्थान), मो. नं. : 09829043378

Cover Design by: Creativeart